विदुर नीति

सत्यकेतु

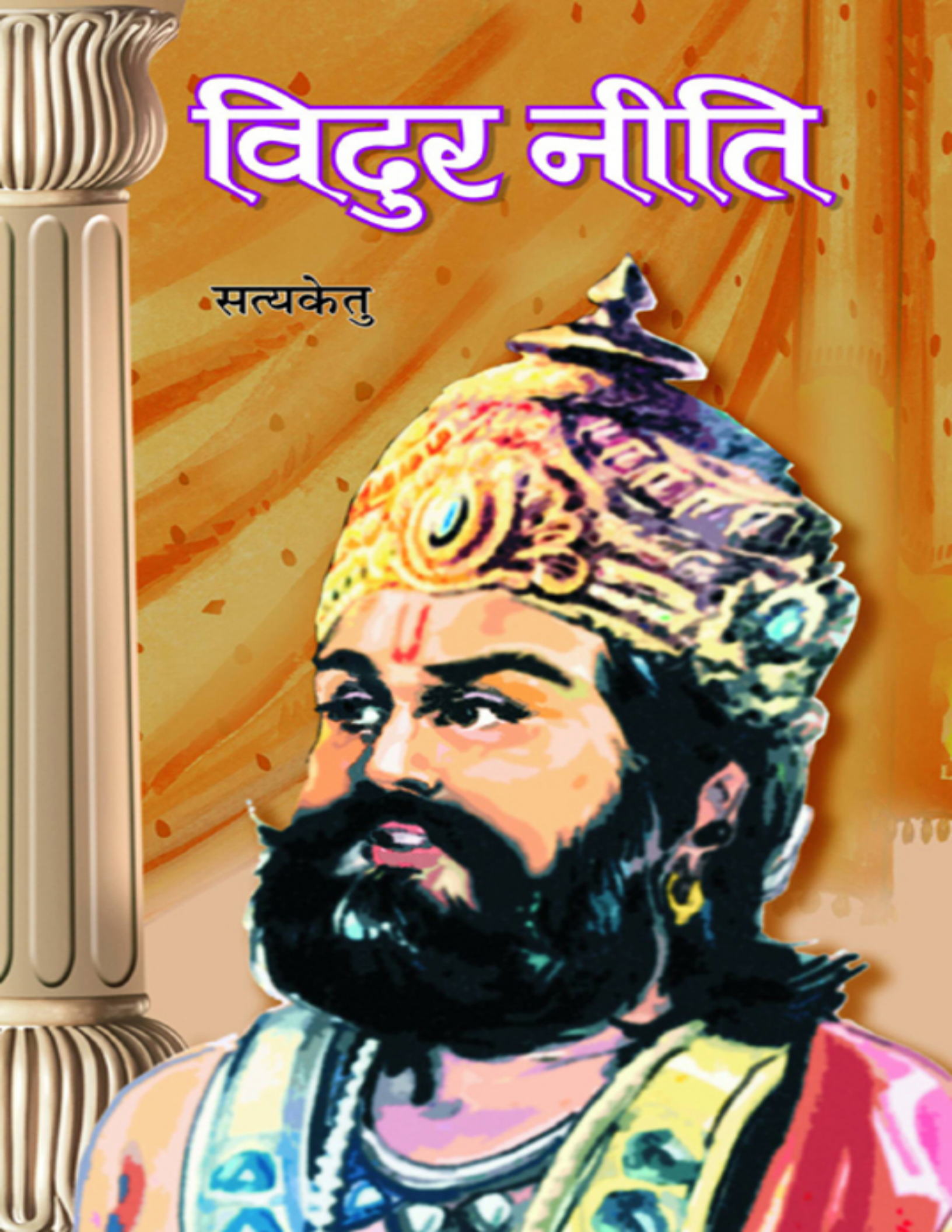

विदुर नीति

सत्यकेतु

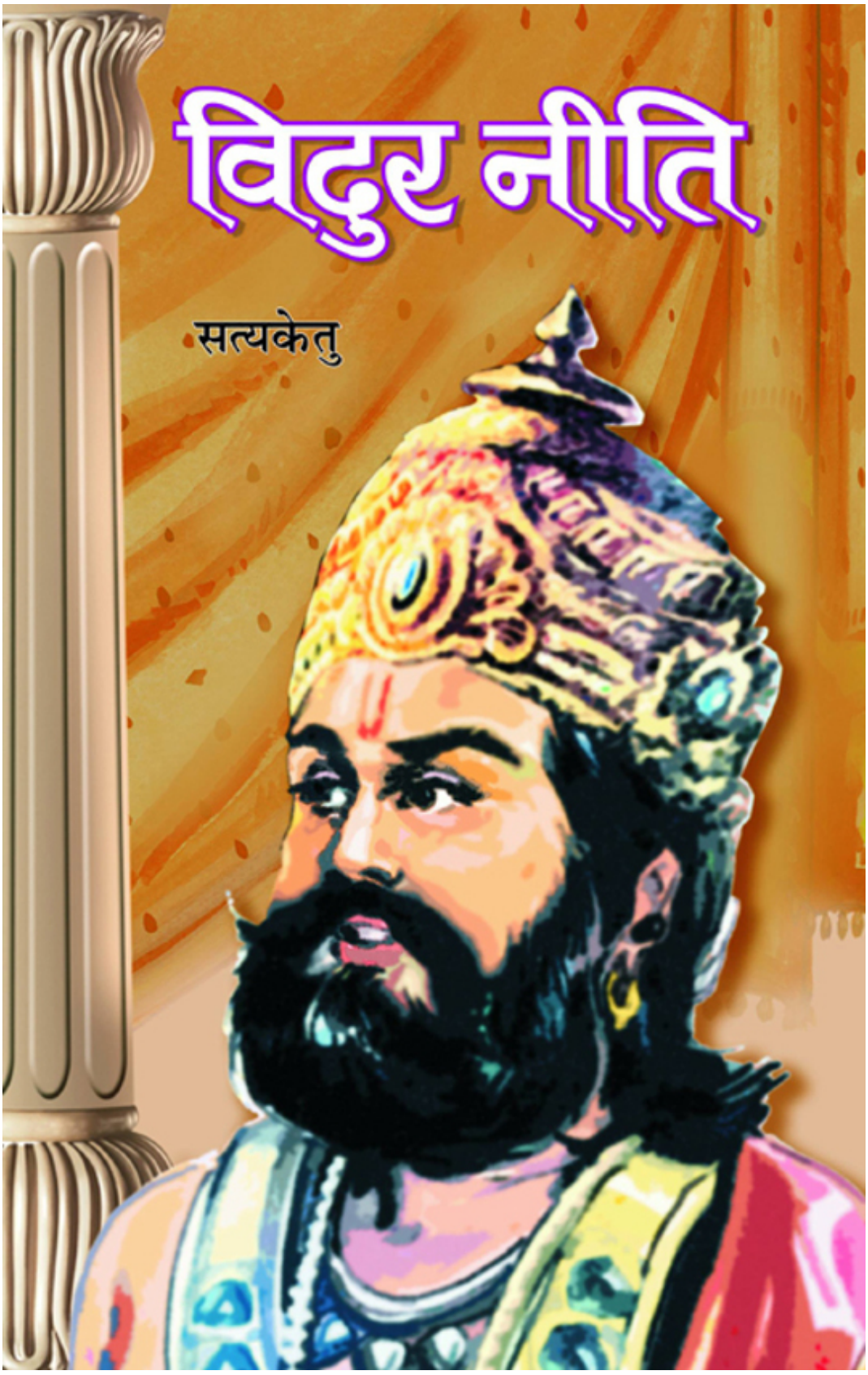

विदुर नीति

सत्यकेतु

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

अपनी बात

'महाभारत' हिंदू सभ्यता और संस्कृति का एक पावन धर्मग्रंथ है। इसका आधार अधर्म के साथ धर्म की लड़ाई पर टिका है। इसे पाँचवाँ वेद भी कहा जाता है। महाभारत में ही समाहित 'श्रीमद् भगवद् गीता' एवं 'विदुर नीति' इसके दो आधार-स्भं हैं। एक में भगवान् श्रीकृष्ण अधर्म के विरुद्ध अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं तो दूसरे में महात्मा विदुर युद्ध टालने के लिए धृतराष्ट्र को अधर्म (दुर्योधन) का साथ छोड़ने के लिए उपदेश करते हैं। यहाँ श्रीकृष्ण तो अपने उद्देश्य में सफल हो जाते हैं, लेकिन विदुर के उपदेश धृतराष्ट्र का हृदय परिवर्तन नहीं कर पाते और जिसका परिणाम महाभारत के युद्ध के रूप में सामने आता है। लेकिन इसके लिए हम विदुरजी की नीति को विफल नहीं ठहरा सकते। उनका प्रत्येक उपदेश अनुभूत है और काल की कसौटी पर भली-भाँति जाँचा-परखा गया है। यथा-

'आग में तपाकर सोने की, सदाचार से सज्जन की, व्यवहार से संत पुरुष की, संकट काल में योद्धा की, आर्थिक संकट में धीर की तथा घोर संकटकाल में मित्र और शत्रु की पहचान होती है।'

'यह जरूरी नहीं कि मूर्ख व्यक्ति दरिद्र हो और बुद्धिमान धनवान। अर्थात् बुद्धि का अमीरी या गरीबी से कोई संबंध नहीं है। जो ज्ञानी पुरुष लोक-परलोक की बारीकियों को समझते हैं; वे ही इस मर्म को समझ पाते हैं।'

'जिस व्यक्ति को बुद्धिबल से मारा जाता है, उसके उपचार में योग्य चिकित्सक, औषधियाँ, जड़ी-बूटियाँ, यज्ञ, हवन, वेद मंत्र आदि सारे उपाय व्यर्थ हो जाते हैं।'

'विष केवल उसके पीने वाले एक व्यक्ति की जान लेता है, शत्र भी एक अभीष्ट व्यक्ति की जान लेता है, लेकिन राजा की एक गलत नीति राज्य और जनता के साथ-साथ राजा का भी सर्वनाश कर डालती है।'

'विवकेशील और बुद्धिमान व्यक्ति सदैव ये चेष्ठा करते हैं कि वे यथाशक्ति कार्य करें और वे वैसा करते भी हैं तथा किसी वस्तु को तुच्छ समझकर उसकी उपेक्षा नहीं करते, वे ही सच्चे ज्ञानी हैं।'

'पाँच लोग छाया की तरह सदा आपके पीछे लगे रहते हैं। ये पाँच लोग हैं-मित्र, शत्रु, उदासीन, शरण देने वाले और शरणार्थी।'

इस प्रकार द्वापर युग की देन विदुर नीति आज कलियुग में कहीं अधिक प्रासंगिक है, क्योंकि आज दुनिया में दुर्योधनों का बाढ़ सी आ गई है। अत: इसके उपदेशों से शिक्षा लेकर व्यक्ति, समाज, राज्य और देश को सुखी और कल्याणकारी बनाया जा सकता है।

—सत्यकेतु

महात्मा विदुर

विदुर कौरवों और पांडवों के काका और धृतराष्ट्र एवं पांडु के भाई थे। उनका जन्म एक दासी के गर्भ से हुआ। उन्हें धर्मराज का अवतार भी माना जाता है। मांडव्य ऋषि ने धर्मराज को श्राप दे दिया था इसी कारण वे सौ वर्ष पर्यंत शूद्र बनकर रहे। एक समय एक राजा के दूतों ने मांडव्य ऋषि के आश्रम पर कुछ चोरों को पकड़ा। दूतों ने चोरों के साथ मांडव्य ऋषि को भी चोर समझकर पकड़ लिया। राजा ने चोरों को शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी। उन चोरों के साथ मांडव्य ऋषि को भी शूली पर चढ़ा दिया गया, किंतु इस बात का पता लगते ही कि वे चोर नहीं हैं, बल्कि ऋषि हैं, राजा ने उन्हें शूली से उतरवा कर अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी।

मांडव्य ऋषि ने धर्मराज के पास पहुँचकर प्रश्न किया कि ''तुमने मुझे मेरे किस पाप के कारण शूली पर चढ़वाया?''

धर्मराज ने कहा कि ''आपने बचपन में एक टिड्डे को काँटे से छेदा था, इसी पाप में आप को यह दंड मिला।''

ऋषि बोले, ''वह कार्य मैंने अज्ञानवश किया था और तुमने अज्ञानवश किए गए कार्य का इतना कठोर दंड देकर अपराध किया है। अत: तुम इसी कारण से सौ वर्ष तक शूद्र योनि में जन्म लेकर मृत्युलोक में रहो।'' मुनि के शाप के कारण ही धर्मराज को विदुर का अवतार लेना पड़ा था। उनके पृथ्वी पर जन्म लेने की कथा इस प्रकार है-

सत्यवती के चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र हुए। शांतनु का स्वर्गवास चित्रांगद और विचित्रवीर्य के बाल्यकाल में ही हो गया था, इसलिए उनका पालन-पोषण भीष्म ने किया। चित्रांगद के बड़े होने पर उन्हें राजगद्दी पर बिठा दिया, लेकिन कुछ ही काल में गंधर्वों से युद्ध करते हुए वह मारा गया। इस पर भीष्म ने उनके अनुज विचित्रवीर्य को राज्य सौंप दिया। अब भीष्म को विचित्रवीर्य के विवाह की चिंता हुई। उन्हीं दिनों काशीराज की तीन कन्याओं, अंबा, अंबिका और अंबालिका का स्वयंवर होने वाला था। उनके स्वयंवर में जाकर अकेले ही भीष्म ने वहाँ आए समस्त राजाओं को परास्त कर दिया और तीनों कन्याओं का हरण करके हस्तिनापुर ले आए। बड़ी कन्या अंबा ने भीष्म को बताया कि वह अपना तन-मन राजा शाल्व को अर्पित कर चुकी है। उसकी बात सुनकर भीष्म ने उसे राजा शाल्व के पास भिजवा दिया और अंबिका और अंबालिका का विवाह विचित्रवीर्य के साथ करवा दिया।

राजा शाल्व ने अंबा को ग्रहण नहीं किया, अत: वह हस्तिनापुर लौटकर आ गई और भीष्म से बोली, ''हे आर्य! आप मुझे हर कर लाये हैं अतएव आप मुझसे विवाह करें।'' किंतु भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा के कारण उसके अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। अंबा रुष्ट होकर परशुराम के पास गई और उनसे अपनी व्यथा सुना कर सहायता माँगी।

परशुराम ने अंबा से कहा, ''हे देवी! आप चिंता न करें, मैं आपका विवाह भीष्म के साथ करवाऊँगा।'' परशुराम ने भीष्म को बुलावा भेजा, किंतु भीष्म उनके पास नहीं गए। इस पर क्रोधित होकर परशुराम भीष्म के पास पहुँचे और दोनों वीरों में भयानक युद्ध छिड़ गया। दोनों ही अभूतपूर्व योद्धा थे इसलिए हार-जीत का फैसला नहीं हो सका। आखिर देवताओं ने हस्तक्षेप करके इस युद्ध को बंद करवा दिया। अंबा निराश होकर वन में तपस्या करने चली गई।

विचित्रवीर्य अपनी दोनों रानियों के साथ भोग-विलास में रत हो गए, किंतु दोनों ही रानियों से उनकी कोई संतान नहीं हुई और वे क्षय रोग से पीडित होकर मृत्यु को प्राप्त हो गए। अब कुल नाश होने के भय से माता सत्यवती ने एक दिन भीष्म से कहा, ''पुत्र! इस वंश को नष्ट होने से बचाने के लिए मेरी आज्ञा है कि तुम इन दोनों रानियों से पुत्र उत्पन्न करो।'' माता की बात सुनकर भीष्म ने कहा, ''माता! मैं अपनी उम्र भर अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा किसी भी स्थिति में भंग नहीं कर सकता।''

यह सुनकर माता सत्यवती को अत्यंत दुख हुआ। अचानक उन्हें अपने पुत्र वेदव्यास का स्मरण हो आया। स्मरण करते ही वेदव्यास वहाँ उपस्थित हो गए। सत्यवती उन्हें देखकर बोलीं, ''हे पुत्र! तुम्हारे सभी भाई नि:संतान ही स्वर्गवासी हो गए। अत: मेरे वंश का नाश होने से बचाने के लिये मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ कि तुम उनकी पत्नियों से संतान उत्पन्न करो।''

वेदव्यास उनकी आज्ञा मानकर बोले, ''माता! आप उन दोनों रानियों से कह दीजिए कि वे एक वर्ष तक नियम व्रत का पालन करती रहें तभी उनको गर्भ धारण होगा।''

एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर वेदव्यास सबसे पहले बड़ी रानी अंबिका के पास गए। अंबिका ने उनके तेज से डरकर अपने नेत्र बंद कर लिए। वेदव्यास लौटकर माता से बोले, ''माता अंबिका का बड़ा तेजस्वी पुत्र होगा

किंतु नेत्र बंद करने के दोष के कारण वह अंधा होगा।''

सत्यवती को यह सुनकर अत्यंत दुख हुआ और उन्होंने वेदव्यास को छोटी रानी अंबालिका के पास भेजा। अंबालिका वेदव्यास को देखकर भय से पीली पड़ गई। उसके कक्ष से लौटने पर वेदव्यास ने सत्यवती से कहा, ''माता! अंबालिका के गर्भ से पांडु रोग से ग्रसित पुत्र होगा।'' इससे माता सत्यवती को और भी दुख हुआ और उन्होंने बड़ी रानी अंबालिका को पुन: वेदव्यास के पास जाने का आदेश दिया।

इस बार बड़ी रानी ने स्वयं न जाकर अपनी दासी को वेदव्यास के पास भेज दिया। दासी ने आनंदपूर्वक वेदव्यास से समागम किया। इस बार वेदव्यास ने माता सत्यवती के पास आकर कहा, ''माते! इस दासी के गर्भ से वेद-वेदांत में पारंगत अत्यंत नीतिवान पुत्र उत्पन्न होगा।'' इतना कहकर वेदव्यास तपस्या करने चले गए।

समय आने पर अंबा के गर्भ से जन्मांध धृतराष्ट्र, अंबालिका के गर्भ से पांडु रोग से ग्रसित पांडु तथा दासी के गर्भ से धर्मात्मा विदुर का जन्म हुआ।

विदुर बड़े पंडित, बुद्धिमान, शांत, दूरदर्शी और पांडवों के बड़े पक्षधर थे। पहले ये राजा पांडु के मंत्री थे, इसलिए पीछे अनेक अवसरों पर इन्होंने पांडवों की भारी विपत्तियों में रक्षा की। लाक्षागृह के जलने के समय भी इन्हीं के परामर्श से पांडवों की जान बची थी। ये धृतराष्ट्र के छोटे भाई और मंत्री भी थे। जिस समय दुर्योधन के बहुत कहने पर धृतराष्ट्र ने इनसे जुए के संबंध में सम्मति माँगी, उस समय इन्होंने उन्हें बहुत रोका और समझाया। पांडवों के वन जाने पर ये दुर्योधन के पास रहते थे। महाभारत का युद्ध आरंभ होने से पहले इन्होंने धृतराष्ट्र को रात भर अनेक प्रकार के अच्छे-अच्छे उपदेश देकर युद्ध रुकवाना चाहा, पर इसमें भी इन्हें सफलता नहीं मिली। युद्ध में इन्होंने पांडवों का पक्ष ग्रहण किया। महाभारत के युद्ध के उपरांत जब पांडवों का राज्य हुआ, तब भी ये बहुत दिनों तक मंत्री पद पर रहे, फिर वन में चले गए। वहाँ राजा युधिष्ठिर से एक बार इनकी भेंट हुई थी। वहीं बहुत दिनों तक घोर तपस्या करने के उपरांत इनका परलोकवास हुआ था। नीति की प्रसिद्ध पुस्तक 'विदुर नीति' या 'विदुर प्रजागर' इन्हीं की रचित मानी जाती है, जो महाभारत के पाँचवें पर्व में 33वें अध्याय से 40वें अध्याय तक है।

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र और दुर्योधन के व्यवहार से बहुत दुखी रहते थे। उनका पांडवों के प्रति जो रवैया था, वह विदुर को अच्छा नहीं लगता था। एक समय ऐसा आया, जब उन्हें लगा कि इन लोगों के साथ रहने और इनका अन्न खाने से उनके ऊपर भी गलत असर पड़ेगा, सो विदुर जीवन में कष्टों को सहर्ष सहते हुए अपनी पत्नी के साथ नगर के बाहर वन में कुटिया बनाकर रहने लगे।

जंगल में जो कुछ खाने की वस्तुएँ मिलतीं, उनसे ही वे संतोष कर लेते थे। वे अपना अधिकतर समय सत्कार्यों और ईश्वर स्मरण में लगाते। उन्हीं दिनों भगवान कृष्ण कौरवों के पास शांतिदूत बनकर आए थे, पर उनकी वार्त्ता असफल हो गई। उन्होंने धृतराष्ट्र और द्रोणाचार्य का आतिथ्य स्वीकार नहीं किया और विदुर के पास पहुँच गए। धृतराष्ट्र ने कृष्ण से भोजन के लिए भी बहुत अनुनय-विनय की, लेकिन कृष्ण भगवान ने उनके आग्रह पर कोई ध्यान नहीं दिया। वहाँ कृष्ण ने भोजन की इच्छा व्यक्त की। विदुर को संकोच हो रहा था कि कैसे जंगल में मिलनेवाली साग-भाजी आदि उन्हें परोसें।

उन्होंने कृष्ण भगवान से संकोच करते हुए आखिर पूछ ही लिया कि ''आप भूखे थे, भोजन का समय भी था और धृतराष्ट्र ने भोजन के लिए आग्रह भी किया, फिर भी आपने वहाँ भोजन क्यों नहीं किया?''

विदुर के सवाल पर मंद-मंद मुसकराते हुए श्रीकृष्ण बोले, ''चाचाजी, जिस भोजन को आप अनुचित मानकर यहाँ वन में आ गए, जिसे आपने ठीक नहीं समझा, वह भोजन मुझे कैसे अच्छा लगता। आपने कैसे सोच लिया कि जिस भोजन को आपने ठुकराया वह मैं खा पाऊँगा।''

विदुर भाव-विभोर हो गए। वे समझ गए कि प्रभु की भूख पदार्थों से नहीं भावना से बुझेगी। कृष्ण ने प्रसन्न मन से विदुर के यहाँ भोजन किया।

विदुर काल की गति को भली-भाँति जानते थे। महाभारत के युद्ध के बाद उन्होंने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र को समझाया कि ''महाराज! अब भविष्य में बड़ा बुरा समय आने वाला है। आप यहाँ से तुंत वन की ओर निकल चलिए। कराल काल शीघ ही यहाँ आनेवाला है, जिसे संसार का कोई भी प्राणी टाल नहीं सकता। आपके पुत्र-पौत्रादि सभी नष्ट हो चुके हैं और वृद्धावस्था के कारण आपकी इंद्रियाँ भी शिथिल हो गई हैं। आपने इन पांडवों को बड़े क्लेश दिए, उन्हें मरवाने की कुचेष्टा की, उनकी पत्नी द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित किया और उनका राज्य छीन लिया। फिर भी उन्हीं का अन्न खाकर अपने शरीर को पाल रहे हैं और भीमसेन के दुर्वचन सुनते रहते हैं। आप मेरी बात मानकर संन्यास धारण कर शीघ ही चुपचाप यहाँ से उत्तराखंड की ओर चले जाइए।''

विदुरजी के इन वचनों से धृतराष्ट्र को प्रज्ञाचक्षु प्राप्त हो गए और वे उसी रात गांधारी को साथ लेकर चुपचाप विदुर के साथ वन को चले गए।

प्रात:काल संध्यावंदन से निवृत्त होकर ब्राह्मणों को तेल, गौ, भूमि और सुवर्ण दान करके जब युधिष्ठिर अपने गुरुजन धृतराष्ट्र, विदुर और गांधारी के दर्शन करने गए, तब उन्हें वहाँ न पाकर चिंतित हुए कि कहीं भीमसेन के कटु वचनों से त्रस्त होकर अथवा पुत्र शोक से दुखी होकर कहीं गंगा में तो नहीं डूब गए। यदि ऐसा है तो मैं ही अपराधी समझा जाऊँगा। वे उनके शोक से दुखी रहने लगे।

एक दिन देवर्षि नारद अपने तंबूरे के साथ वहाँ पधारे। युधिष्ठिर ने प्रणाम करके और यथोचित सत्कार के साथ आसन देकर उनसे विदुर, धृतराष्ट्र और गांधारी के विषय में प्रश्न किया। उनके इस प्रश्न पर नारद जी बोले-''हे

युधिष्ठिर! तुम किसी प्रकार का शोक मत करो। यह संपूर्ण विश्व परमात्मा के वश में है और वही सब की रक्षा करता है। तुम्हारा यह समझना कि मैं ही उनकी रक्षा करता हूँ, तुम्हारी भूल है। यह संसार नश्वर है तथा जानेवालों के लिए शोक नहीं करना चाहिए। शोक का कारण केवल मोह ही है, इस मोह को त्याग दो। यह पंचभौतिक शरीर नाशवान एवं काल के वश में है। तुम्हारे चाचा धृतराष्ट्र, माता गांधारी एवं विदुर उत्तराखंड में सप्तश्रोत नामक स्थान पर आश्रम बनाकर रहते हैं। वे वहाँ तीनों काल स्नान करके अग्नहोत्र करते हैं और उनके संपूर्ण पाप धुल चुके हैं। अब उनकी कामनाएँ भी शांत हो चुकी हैं। सदा भगवान के ध्यान में रहने के कारण तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण और अहंकार बुद्धि नष्ट हो चुकी है। उन्होंने अपने आप को भगवान में लीन कर दिया है। आज से पाँचवें दिन अपने शरीर त्याग देंगे। वन में अग्नि लग जाने के कारण वे उसी में भस्म हो जाएँगे। उनकी साधवी पत्नी गांधारी भी उसी अग्नि में प्रवेश कर जाएँगी। फिर विदुरजी वहाँ से तीर्थयात्रा के लिए चले जाएँगे। अत: तुम उनके विषय में चिंता करना त्याग दो।''

इतना कहकर देवर्षि नारद आकाशमार्ग से स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर गए। युधिष्ठिर ने देवर्षि नारद के उपदेश को समझकर शोक का परित्याग कर दिया।

अपनी प्रतिभा, वाव्क्तपटुता और कर्मशीलता के कारण विदुर महाभारत कथा का शायद ही कोई महत्त्वपूर्ण प्रसंग हो, जहाँ उपस्थित न हों और अपनी राजनीतिक राय उन्होंने न दी हो।

भीष्म जैसे राजनीति शात्र के परमज्ञानी पितामह के मौजूद रहते हुए भी, धृतराष्ट्र ने विदुर को ही अपना मंत्री बनाया था, इससे कौरव पक्ष को दो फायदे हो गए। एक यह कि विदुर जैसे व्यक्ति से धृतराष्ट्र को सदा एक निष्पक्ष और उचित राय मिलती रहती और दूसरा यह कि आयु में छोटा भाई होने के कारण विदुर की राय को न मानने में धृतराष्ट्र हमेशा स्वतंत्र थे।

विदुर ने धृतराष्ट्र को हमेशा ठीक और दो टूक सलाह दी। विडंबना देखिए कि जब धृतराष्ट्र की राजसभा में जुआ खेला जाना प्रारंभ हुआ तो राजा की आज्ञा से विदुर ही युधिष्ठिर को जुए का निमंत्रण देने गए, पर जुआ खेले जाने के दौरान ही विदुर ने जिस निर्भीक तरीके से जुए का विरोध किया और दुर्योधन के चरित्र का पर्दाफाश किया, वह साहसी मंत्री के ही वश का काम था। तब विदुर ने दुर्योधन को कौवा और गीद्ध तक कह दिया और धृतराष्ट्र को चेताया कि दुर्योधन के रूप में एक कौवा और एक गीद्ध उनके कुल का विनाश करने को पैदा हुआ है।

दुर्योधन का परित्याग कर देने की सलाह देते हुए विदुर ने धृतराष्ट्र को वह श्लोक सुनाया, जो भारत के राजनीति शात्र का बड़ा ही लोकप्रिय कथन बन गया है-त्यजेत् कुलार्थे पुरुषम् ग्रामस्यार्थे कुं त्यजेत। ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्। अर्थात् एक व्यक्ति का बलिदान देकर भी कुल को बचाना चाहिए, कुल का बलिदान देकर भी ग्राम को बचाना चाहिए, ग्राम की बलि चढ़ाकर भी राज्य बचा लेना चाहिए, और खुद को बचाने के लिए राज्य का भी बलिदान कर देना चाहिए, पर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन नामक एक व्यक्ति का बलिदान नहीं किया और अंतत: राज्य से हाथ धोना पड़ा।

इसी प्रकार जब भरी राजसभा में द्रौपदी को निर्वत्र किया जा रहा था और विदुर हर कुछ क्षणों के बाद पूरी सभा को बार-बार इस कुकृत्य के भयानक दुष्परिणामों की चेतावनी दे रहे थे। ये तमाम घटनाएँ तो बाद की हैं। पांडवों के जन्मकाल से ही विदुर का स्नेह इन पितृविहीन बालकों से हो गया था और उन्होंने बार-बार धृतराष्ट्र को समझाया कि पांडवों को उनका न्यायोचित हिस्सा मिलना ही चाहिए।

जब दुर्योधन ने भीम को पानी में फेंकवा दिया था तो विदुर ने ही कुंती को ढाढस बँधाया था। जब दुर्योधन ने वारणावत के लाक्षागृह में पांडवों को उनकी माँ कुंती सहित जला देने की योजना बनाई तो विदुर ने ही इस पूरे षत्रं का पता युधिष्ठिर को भरी राजसभा में एक ऐसी भाषा के माध्यम से दे दिया, जो सिर्फ विदुर और युधिष्ठिर ही जानते थे।

यानी नीति, उपदेश और कर्म के क्षेत्र में इतने सारे काम विदुर ने किए। विदुर के इन्हीं महान् नीतिवाक्यों और कार्यों के कारण व्यास ने उन्हें महाभारत में महात्मा विदुर बार-बार कहा है।

जब कृष्ण युद्ध टालने का एक आखिरी प्रयास करते हुए युधिष्ठिर के दूत बनकर धृतराष्ट्र से मिलने आए तो धृतराष्ट्र के पाँवों तले से जमीन खिसकने लगी। घबराहट के मारे उसने विदुर से पूरी रात इस बारे में परामर्श किया कि कृष्ण के साथ कैसे बरता जाए, पर धृतराष्ट्र ने विदुर की तब भी कहाँ

मानी?

स्पष्ट है कि विदुर अपने समय के एक ऐसे नीतिज्ञ थे, जिनके कथनों में नीतिमत्ता है, निर्भीकता है और प्रासंगिकता है। जिस समय जो कहना चाहिए, वह विदुर ने कहा और ठीक उसी आधार पर उनका नाम देश के महान् राजनीतिवेत्ताओं में आ गया। उनके धृतराष्ट्र को दिए उपदेश आज 'विदुर नीति' के नाम से लोकप्रिय है। इनका अनुसरण करके राज्य और व्यक्ति अपना कल्याण कर सकते हैं।

विदुर नीति के कुछ नीति-परक वाक्यांश

1. नीति विशारद विदुरजी कहते हैं कि जो अपने स्वभाव के विपरीत कार्य करते हैं वह कभी नहीं शोभा पाते।

2. गृहस्थ होकर अकर्मण्यता और संन्यासी होते हुए विषयासक्ति का प्रदर्शन करना ठीक नहीं है।
3. अल्पमात्र में धन होते हुए भी कीमती वस्तु को पाने की कामना और शक्तिहीन होते हुए भी क्रोध करना मनुष्य की देह के लिये कष्टदायक और काँटों के समान है।
4. किसी भी कार्य को प्रारंभ करने से पहले यह आत्ममंथन करना चाहिए कि हम उसके लिये या वह हमारे लिये उपयुक्त है कि नहीं। अपनी शक्ति से अधिक का कार्य और कोई वस्तु पाने की कामना करना स्वयं के लिये ही कष्टदायी होता है।
5. न केवल अपनी शक्ति का, बल्कि अपने स्वभाव का भी अवलोकन करना चाहिए। अनेक लोग क्रोध करने पर स्वत: ही काँपने लगते हैं तो अनेक लोग निराश होने पर मानसिक संताप का शिकार होते हैं। अत: इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे जिस मानसिक भाव का बोझ हमारी यह देह नहीं उठा पाती उसे अपने मन में ही न आने दें। कहने का तात्पर्य यह है कि जब हम कोई काम या कामना करते हैं तो उस समय हमें अपनी आर्थिक, मानसिक और सामाजिक स्थिति का भी अवलोकन करना चाहिए।
6. कभी-कभी गुस्से या प्रसन्नता के कारण हमारा रक्त प्रवाह तीव्र हो जाता है और हम अपने मूल स्वभाव के विपरीत कोई कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं और जिसका हमें बाद में दुख भी होता है। इसलिए विशेष अवसरों पर आत्ममुग्ध होने की बजाय आत्मचिंतन करते हुए कार्य करना चाहिए।

❑

1. वैशम्पायन उवाच

द्वा:स्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपति:।
विदुं दृष्टुमिच्छामि तमिहानय मा चिरम्।।1।।

वै शंपायन बोले-चिंतातुर राजा धृतराष्ट्र ने अपने द्वारपाल से कहा-द्वारपाल, शीघ विदुर को यहाँ बुलाकर लाओ। मुझे उनसे जरूरी बात करनी है।

⁘⁘⁘

प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूत: क्षत्तारमब्रवीत्।
ईश्चरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षति।।2।।

द्वारपाल शीघ विदुर के पास पहुँचा और बोला-''महात्मन्, महाराज धृतराष्ट्र अविलंब आपसे मिलना चाहते हैं।

⁘⁘⁘

एवमुक्तक्तस्तु विदुर: प्राप्य राजनिवेशनम्।
अब्रवीत् धृतराष्ट्राय द्वा:स्थं मां प्रतिवेदय।।3।।

विदुर शीघ महाराज धृतराष्ट्र के महल पहुँचे और द्वारपाल से बोले-महाराज से कहो, मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ।

⁘⁘⁘

द्वा:स्थ उवाच

विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र! तव शासनात्।
द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम्।।4।।

द्वारपाल ने कहा-महाराज, विदुरजी आपसे भेंट करने की आज्ञा चाहते हैं। मेरे लिए क्या आदेश है?

धृतराष्ट्र उवाच

प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुं दीर्घदर्शिनम्।
अहं हि विदुरस्यास्य नाकल्पो जातु दर्शने।।5।।

धृतराष्ट्र बोले-विदुरजी को आदर सहित शीघ यहाँ लाओ। मैं उनसे मिलने को उत्सुक हूँ।

⁘⁘⁘

द्वा:स्थ उवाच

प्रविशान्त:पुं क्षत्तर्महाराजस्य धीमत:।
न हि ते दर्शनेऽकल्पो जातु राजाऽब्रवीद्विध माम्।।6।।

द्वारपाल बोला-हे महात्मा विदुर, महाराज आपकी प्रतीक्षा में हैं। आप मेरे साथ आइए।

⁘⁘⁘

वैशम्पायन उवाच

तत: प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम्।
अब्रवीत् प्राञ्चलिर्वाक्यं चिन्तमा [या] नं नराधिपम्।।7।।

वैशंपायन बोले-द्वारपाल के साथ विदुर धृतराष्ट्र के महल में पहुँचे और उन्हें प्रणोम किया फिर बोले।

⁘⁘⁘

विदुरोऽहं महाप्राज्ञ सम्प्राप्तस्तव शासनात्।
यदि किञ्चन कर्त्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम्।।8।।

महाराज! दासीपुत्र विदुर आपकी सेवा में उपस्थित है। आज्ञा दीजिए, आपके आदेश का पालन करने में मुझे प्रसन्नता होगी।

⁂

धृतराष्ट्र उवाच

सञ्चयो विदुर! प्राज्ञो गर्हयित्वा च मां गतः।
अजातशत्रो श्वो वाक्यं सभामध्ये च वक्ष्यति।।9।।

धृतराष्ट्र बोले-हे विदुर, पांडवों से मिलकर संजय यहाँ आया था और मुझे बहुत बुरा-भला कहकर गया है। वह भरी सभा में युधिष्ठिर का संदेश सबको बताएगा।

⁂

तस्याद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया।
तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत् प्रजागरम्।।10।।

युधिष्ठिर ने पता नहीं क्या संदेश दिया है। यही चिंता मुझे खाए जा रही है। ठीक से नींद नहीं आ रही। क्या करूँ, समझ नहीं आ रहा?

⁂

जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि।
तद् ब्रूहि त्वं हिं नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्मसि।।11।।

विदुर, तुम मेरे भाई हो और सदैव मेरे हित की बात करते हो। बताओ इस स्थिति में मैं क्या करूँ? धर्मपूर्वक सब बात स्पष्ट कहो।

⁂

यतः प्राप्तः सञ्जयः पाण्डवेभ्यो न मे यथावन्मनसः प्रशान्ति।
सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि किं वक्ष्यतीत्येव मेऽद्य प्रचिन्ता।।12।।

संजय पांडवों के पास से पता नहीं क्या संदेश लाया है। मैं इसी विषय को लेकर चिंतित हूँ। मेरा शरीर जल रहा है। इंद्रियाँ शिथिल पड़ती जा रही हैं। सभा में वह पता नहीं क्या कहेगा, यही चिंता मुझे तोड़े जा रही है।

⁂

विदुर उवाच

अभियुक्तंक्त बलवता दुर्बलं हीनसाधनम्।
हृतस्त्वं कामिनं चौरमाविशन्ति प्रजागराः।।13।।

विदुर बोले-कमजोर मनुष्य की हालत अकसर ऐसी हो जाती है, क्योंकि अनजाने में ही वह अपने से अधिक बलवान व्यक्ति से शत्रुता और विरोध मोल ले लेता है। चोर और कामपीड़ित की भी रात की नींद उड़ जाती है।

⁂

कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप।
कच्चिपच्च परवित्तेषु गृध्यन्न परितप्यसे।।14।।

महाराज! आपने भी तो यही गलती नहीं कर दी है कि किसी बलवान से शत्रुता मोल ले ली है। आप दूसरों के अधिकार पर तो कुदृष्टि नहीं डालने लगे हैं? क्योंकि इन सब दोषों के कारण ही रातों की नींद और इंद्रियाँ बेचैन होने लगती हैं?

⁂

धृतराष्ट्र उवाच

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैश्रेयसं वचः।
अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः।।15।।

धृतराष्ट्र बोले-भाता विदुर ! आप एके धर्म-परायण और विद्वान व्यक्ति हैं। बुद्धिमान और महात्मा लोग भी आपकी श्रेष्ठता मानते हैं। इस स्थिति में मैं क्या करूँ? आप धर्मयुक्त, नीतिवचनों से मेरी चिंता को शांत करने की कृपा करें।

⁘⁘⁘

विदुर उवाच

राजलक्षणसम्पन्नत्रैलोक्यस्याधिपो भवेत्।
प्रेष्यस्ते प्रेषितश्चैव धृतराष्ट्र! युधिष्ठिरः।।16।।

विदुर बोले-महाराज, आप युधिष्ठिर की योग्यता से भली-भाँति परिचित हैं। उनमें राजा बनने के सारे गुण हैं। वे आपके आज्ञाकारी भी हैं, लेकिन सब जानने के बावजूद आपने उन्हें वनवास की सजा दे दी।

⁘⁘⁘

विपरीततरश्च त्वं भागधेये न सम्मतः।
अर्चिषां प्रक्षयाच्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः।।17।।

महाराज, आप धर्मात्मा हैं और धर्म के जानकार भी, लेकिन क्या नेत्रहीन होने के कारण आप अज्ञानी हो गए और युधिष्ठिर को नहीं पहचान सके? यहाँ तक कि उन्हें राज्य का उनका समुचित हिस्सा भी देने से इनकार कर दिया। आप इसके लिए भी सहमत नहीं हुए।

⁘⁘⁘

आनृशंस्यादनुक्रोशाद् धर्मात् सत्यात् पराक्रमात्।
गुरुत्वात् त्वयि सम्प्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्षते।।18।।

युधिष्ठिर बड़े कोमल, दयालु, सच्चे, धर्म पथ पर चलने वाले और वीर पुरुष हैं। और चूँकि वे आपका आदर करते हैं, इसलिए सारी पीड़ा को दुर्भाग्य मानकर झेल रहे हैं।

⁘⁘⁘

दुर्योधने सौबले च कर्णे दुश्शासने तथा।
एतेष्वैश्चर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि।।19।।

दुर्योधन, शकुनि, दुशासन और कर्ण पर राज्य-भार सौंपकर आप राज्य और जनता के कल्याण की बात सोच भी कैसे सकते हैं। इन्हें इतना योग्य मानते हैं आप?

⁘⁘⁘

पण्डितस्य लक्षणानि

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते।।20।।

जो अपनी योग्यता से भली-भाँति परिचित हो और उसी के अनुसार कल्याणकारी कार्य करता हो, जिसमें दुख सहने की शक्ति हो, जो विपरीत स्थिति में भी धर्म-पथ से विमुख नहीं होता, ऐसा व्यक्ति ही सच्चा ज्ञानी कहलाता है।

⁘⁘⁘

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम्।।21।।

सद्गुण, शुभ कर्म, भगवान् के प्रति श्रद्धा और विश्वास, येज्ञ, दान, जनकल्याण आदि, ये सब ज्ञानीजन के शुभ-लक्षण होते हैं।

.:.:.:.

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्री स्तम्भो मान्यमानिता।
यमर्थान् नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते।।22।।

जो व्यक्ति क्रोध, अहंकार, दुष्कर्म, अति-उत्साह, स्वार्थ, उद्दंडता इत्यादि दुर्गुणों की ओर आकर्षित नहीं होते, वे ही सच्चे ज्ञानी हैं।

.:.:.:.

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते।।23।।

दूसरे लोग जिसके कार्य, व्यवहार, गोपनीयता, सलाह और विचार को कार्य पूरा हो जाने के बाद ही जान पाते हैं, वही व्यक्ति ज्ञानी कहलाता है।

.:.:.:.

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते।।24।।

जो व्यक्ति सरदी-गरमी, अमीरी-गरीबी, प्रेम-घृणा इत्यादि विषम परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होता और तटस्थ भाव से अपना राजधर्म निभाता है, वही सच्चा ज्ञानी है।

.:.:.:.

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते।।25।।

जो व्यक्ति अपनी सांसारिक बुद्धि को धर्म और अर्थ के वरण में लगाता है, जो भागों से सदैव दूर रहकर पुरुषार्थ में रत रहता है, वही ज्ञानी है।

.:.:.:.

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते।
न किञ्चिदवमन्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः।।26।।

विवकेशील और बुद्धिमान व्यक्ति सदैव ये चेष्ठा करते हैं कि वे यथाशक्ति कार्य करें और वे वैसा करते भी हैं तथा किसी वस्तु को तुच्छ समझकर उसकी उपेक्षा नहीं करते, वे ही सच्चे ज्ञानी हैं।

.:.:.:.

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टो व्युपयुङ्क्ते परार्थे तत् प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य।।27।।

ज्ञानी लोग किसी भी विषय को शीघ्र समझ लेते हैं, लेकिन उसे धैर्यपूर्वक देर तक सुनते रहते हैं। किसी भी कार्य को कर्तव्य समझकर करते हैं, कामना समझकर नहीं और व्यर्थ किसी के विषय में बात नहीं करते।

.:.:.:.

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः।।28।।

जो व्यक्ति दुर्लभ वस्तु को पाने की इच्छा नहीं रखते, नाशवान वस्तु के विषय में शोक नहीं करते तथा विपत्ति आ पड़ने पर घबराते नहीं हैं, डटकर उसका सामना करते हैं, वही ज्ञानी हैं।

.:.:.:.

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते।।29।।

जो व्यक्ति किसी भी कार्य-व्यवहार को निश्चयपूर्वक आरंभ करता है, उसे बीच में नहीं रोकता, समय को बरबाद नहीं करता तथा अपने मन को नियंत्रण में रखता है, वही ज्ञानी है।

⁘⁘⁘

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ!।।30।।
हे भरतकुलश्रेष्ठ धृतराष्ट्र! ज्ञानीजन श्रेष्ठ कार्य करते हैं। कल्याणकारी व राज्य की उन्नति के कार्य करते हैं। ऐसे लोग अपने हितैषी में दोष नहीं निकालते।

⁘⁘⁘

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते।।31।।
जो व्यक्ति न तो सम्मान पाकर अहंकार करता है और न अपमान से पीड़ित होता है। जो जलाशय की भाँति सदैव क्षोभरहित और शांत रहता है, वही ज्ञानी है।

⁘⁘⁘

तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम्।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते।।32।।
जो व्यक्ति सभी भौतिक वस्तुओं की वास्तविकता को जानता हो, सभी प्रकार के कार्य करने में निपुण हो तथा उन कार्यों को भी जानता हो जिन्हें दूसरे करने में असमर्थ हों, ऐसा व्यक्ति ज्ञानी होता है।

⁘⁘⁘

प्रवृत्तवाक् विचित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।
आशु ग्रन्थस्य वक्तक्ता च यः स पण्डित उच्यते।।33।।
जो व्यक्ति बोलने की कला में निपुण हो, जिसकी वाणी लोगों को आकर्षित करे, जो किसी भी ग्रंथ की मूल बातों को शीघ्र ग्रहण करके बता सकता हो, जो तर्क-वितर्क में निपुण हो, वही ज्ञानी है।

⁘⁘⁘

श्रुं प्रज्ञानुं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असम्भिन्नायेमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः।।34।।
जो व्यक्ति गंथों-शात्रों से विद्या ग्रहण कर उसी के अनुरूप अपनी बुद्धि को ढालता है और अपनी बुद्धि का प्रयोग उसे प्राप्त विद्या के अनुरूप ही करता है तथा जो सज्जन पुरुषों की मर्यादा का कभी उल्लंघन नहीं करता, वही ज्ञानी है।

⁘⁘⁘

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधै।।35।।
बिना पढ़े ही स्वयं को ज्ञानी समझकर अहंकार करने वाला, दरिद्र होकर भी बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाने वाला तथा बैठे-बिठाए धन पाने की कामना करने वाला व्यक्ति मूर्ख कहलाता है।

⁘⁘⁘

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते।।36।।
जो व्यक्ति अपना काम छोड़कर दूसरों के काम में हाथ डालता है तथा मित्र के कहने पर उसके गलत कार्यो में उसका साथ देता है, वह मूर्ख कहलाता

है।

⁘⁘⁘

अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत्।

बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम्।।37।।
जो व्यक्ति अपने हितैषियों को त्याग देता है तथा अपने शत्रुओं को गले लगाता है और जो अपने से शक्तिशाली लोगों से शत्रुता रखता है, उसे महामूर्ख कहते हैं।

⁘⁘⁘

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम्।।38।।
जो व्यक्ति शत्रु से दोस्ती करता है तथा मित्र और शुभचिंतकों को दुख देता है, उनसे ईर्ष्या-द्वेष करता है। सदैव बुरे कार्यों में लिप्त रहता है, वह मूर्ख कहलाता है।

⁘⁘⁘

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ।।39।।
हे राजन! जो व्यक्ति अनावश्यक कर्म करता है, सभी को संदेह की दृष्टि से देखता है, आवश्यक और शीघ्र करने वाले कार्यो को विलंब से करता है, वह मूर्ख कहलाता है।

⁘⁘⁘

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि च नार्चति।
सुहृन्मित्रं न लभते तमाहुर्मूढचेतसम्।।40।।
जो व्यक्ति अपने पितों का तर्पण-श्राद्ध नहीं करता, देवताओं का पूजन-वंदन नहीं करता, जिसके सज्जन लोग मित्र नहीं होते, वह मूर्ख है।

⁘⁘⁘

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते।
अविश्चस्ते विश्चसिति मूढचेता नराधमः।।41।।
मूर्ख व्यक्ति बिना आज्ञा लिए किसी के भी कक्ष में प्रवेश करता है, सलाह माँगे बिना अपनी बात थोपता है तथा अविश्वसनीय व्यक्ति पर भरोसा करता है।

⁘⁘⁘

परं क्षिपति दोषेण वर्त्तमानः स्वयं तथा।
यश्च वुक्तध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः।।42।।
जो अपनी गलती को दूसरे की गलती बताकर स्वयं को बुद्धिमान दरशाता है तथा तथा अक्षम होते हुए भी क्रुद्ध होता है, वह महामूर्ख कहलाता है।

⁘⁘⁘

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम्।
अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते।।43।।
जो अशक्त होते हुए भी, किसी भी प्रकार से बिना श्रम किए, किसी अप्राप्य वस्तु की कामना करता है, लोग उसे मूर्ख कहते हैं।

⁘⁘⁘

अशिष्यं शास्ति यो राजन् यश्च शून्यमुपासते।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम्।।44।।
जो व्यक्ति अयोग्य शिष्य को ज्ञानोपदेश देता है, शून्य की स्तुति करता है तथा कायरतापूर्ण कार्य करता है, वह मूर्ख है।

⁘⁘⁘

अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्चर्यमेव वा।

विचरत्यमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते।।45।।
जो व्यक्ति विपुल धन-संपत्ति, ज्ञान, ऐश्वर्य, श्री इत्यादि को पाकर भी अहंकार नहीं करता, वह ज्ञानी कहलाता है।

∴∵∴

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः।।46।।
जो व्यक्ति स्वार्थी है, कीमती वत्र, स्वादिष्ट व्यंजन, सुख-ऐश्वर्य की वस्तुओं का उपभोग स्वयं करता है; उन्हें जरूरतमंदों में नहीं बाँटता-उससे बढ़कर क्रूर व्यक्ति कौन होगा?
एकः पापानि कुरुते फलं भुत्तेक्त महाजनः।
भोत्तक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते।।47।।
व्यक्ति अकेला पाप-कर्म करता है, लेकिन उसके तात्कालिक सुख-लाभ बहुत से लोग उपभोग करते हैं और आनंदित होते हैं। बाद में सुख-भोगी तो पाप-मुक्त हो जाते हैं, लेकिन कर्ता पाप-कर्मों की सजा पाता है।

∴∵∴

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुत्तक्ताह्य धनुष्मता।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं सराकम्।।48।।
कोई धनुर्धर जब बाण छोड़ता है तो हो सकता है कि वह बाण किसी को मार दे या न भी मारे, लेकिन जब एक बुद्धिमान कोई गलत निर्णय लेता है तो उससे राजा सहित संपूर्ण राष्ट्र का विनाश हो सकता है।

∴∵∴

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव।।49।।
एक बुद्धि से दो-कर्तव्य एवं अकर्तव्य-का निश्चय करके राजनीति के चार अंगों-साम, दाम, दंड और भेद-द्वारा तीन-शत्रु, मित्र तथा तटस्थ-को अपने अधीन करें। पाँच इंद्रियों-आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा-को जीतकर छह राजनीतिक गुणों-संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा समाश्रयरूप-द्वारा सात व्यसनों-त्री, जुआ, मद्य, कठोर वाणी, कठोर दंड, अन्याय से धनोपार्जन और शिकार का त्याग कर सुखी जीवन बिताएँ।

∴∵∴

एकं विषरसो हन्ति शत्रेणैकश्च वध्यते।
सराष्ट्रं सप्रं हन्ति राजानं मत्रविप्लवः।।50।।
विष केवल उसके पीने वाले एक व्यक्ति की जान लेता है, शत्र भी एक अभीष्ट व्यक्ति की जान लेता है, लेकिन राजा की एक गलत नीति राज्य और जनता के साथ-साथ राजा का भी सर्वनाश कर डालती है।

∴∵∴

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात्।।51।।
स्वादिष्ट पकवान मिल-बाँटकर खाने चाहिए, नीतिगत निर्णय अकेले नहीं लेने चाहिए, कहीं जाना हो तो अकेले न जाएँ, मार्ग में किसी को साथ ले लेना चाहिए तथा बहुत से लोग सोये हों तो उनमें अकेले नहीं जागना चाहिए।

∴∵∴

एकमेवाद्वितीयं तद् यद् राजन् नावबुद्धयसे।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव।।52।।
महाराज! नौका में बैठकर ही समुद्र पार किया जा सकता है, इसी प्रकार सत्य की सीढ़ियाँ चढ़कर ही स्वर्ग पहुँचा जा सकता है, इसे समझने का प्रयास करें।

∴∵∴

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युत्तक्तमशत्तक्तं मन्यते जनः।।53।।

क्षमाशील व्यक्तियों में क्षमा करने का गुण होता है, लेकिन कुछ लोग इसे उसके अवगुण की तरह देखते हैं। यह अनुचित है।

⁘⁘⁘

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम्।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा।।54।।

क्षमा तो वीरों का आभूषण होता है। क्षमाशीलता कमजोर व्यक्ति को भी बलवान बना देती है और वीरों का तो यह भूषण ही है।

⁘⁘⁘

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते।
शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः।।55।।

क्षमा ऐसा गुण है जिसके द्वारा सभी को वश में किया जा सकता है, क्षमा से कौन सा मनोरथ सिद्ध नहीं किया जा सकता, महाराज! जिसके हाथ में शांतिरूपी तलवार हो, दुष्ट लोग उसका कुछ अहित नहीं कर सकते।

⁘⁘⁘

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।
अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत्।।56।।

जिस प्रकार घास-फूस रहित स्थान में लगी आग अपने आप बुझ जाती है, उसी प्रकार क्षमाहीन व्यक्ति अपने साथ-साथ दूसरों को भी दोष का भागी बना लेता है।

⁘⁘⁘

एको धर्म परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा।।57।।

केवल धर्म-मार्ग ही परम कल्याणकारी है, केवल क्षमा ही शांति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है, केवल ज्ञान ही परम संतोषकारी है तथा केवल अहिंसा ही सुख प्रदान करने वाली है।

⁘⁘⁘

द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिवं।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्।।58।।

जिस प्रकार बिल में रहने वाले मेढक, चूहे आदि जीवों को सर्प खा जाता है, उसी प्रकार शत्रु का विरोध न करने वाले राजा और परदेस गमन से डरने वाले ब्राह्मण को यह काल (समय) खा जाता है।

⁘⁘⁘

द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिंल्लोके विरोचते।
अब्रुवन् परुषं किञ्चदसतोऽनर्चयंस्तथा।।59।।

जो व्यक्ति जरा भी कठोर नहीं बोलता हो तथा दुर्जनों का आदर-सत्कार न करता हो, वही इस संसार में सब से आदर-सम्मान पाता है।

⁘⁘⁘

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्ययकारिणौ।
त्रियः कोमितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः।।60।।

राजन! इस संसार में दो प्रकार के लोग दूसरों की बात पर भरोसा करके उसी के अनुसार कर्म करने वाले होते हैं। एक, किसी त्री के प्रेमी की कामना करने वाली त्रियाँ तथा दूसरे, जिस व्यक्ति का सब लोग आदर-सम्मान करते हैं, उसका आदर-सम्मान करने वाला व्यक्ति।

⁘⁘⁘

द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ।

यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः।।61।।
निर्धनता एवं अक्षमता के बावजूद धन-संपत्ति की इच्छा तथा अक्षम एवं असमर्थ होने के बावजूद क्रोध करना ये दोनों अवगुण शरीर में काँटों की तरह चुभकर उसे सुखाकर रख देते हैं।

द्वाविमौ न विराजेते विपरीतेन कर्मणा।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव भिक्षुकः।।62।।
अपनी मर्यादा के विपरीत कर्म करके ये दो प्रकार के लोग संसार में अपमान के भागी बनते हैं-एक, कर्महीन गृहस्थ और दूसरे सांसारिक मोह-माया में फँसे संन्यासी।

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्चे क्षमया युक्तक्ताढ्य दरिद्रश्च प्रदानवान्।।63।।
जो व्यक्ति शक्तिशाली होने पर क्षमाशील हो तथा निर्धन होने पर भी दानशील हो-इन दो व्यक्तियों को स्वर्ग से भी ऊपर स्थान प्राप्त होता है।

न्यायार्जितस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम्।।64।।
न्याय और मेहनत से कमाए धन के ये दो दुरुपयोग कहे गए हैं-एक, कुपात्र को दान देना और दूसरा, सुपात्र को जरूरत पड़ने पर भी दान न देना।

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिदं चातपस्विनम्।।65।।
जो व्यक्ति अमीर होने पर भी दानशील न हो और गरीब होने पर जिसमें कष्ट सहने की शक्ति न हो, इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों को गले में पत्थर बाँधकर पानी में डुबो देना चाहिए। अर्थात् इनका जीवन व्यर्थ है।

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः।।66।।
योग में निपुण संन्यासी और युद्ध-भूमि में लड़ते-लड़ते बलिदान होने वाला व्यक्ति-ये दोनों जीवन-मरण के बंधन से मुक्त होकर मोक्ष पाते हैं।

त्रायोपाया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ।
कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः।।67।।
महाराज! वेद-पुराणों के ज्ञाता विद्वानों ने इस संसार में लोगों की कार्य-सिद्धि के तीन उपाय बताए हैं-उत्तम, मध्यम और अधम।

त्रिविधाः पुरुषां राजन्नुत्तमाधममध्यमाः।
नियोजयेद् यथावत् तांत्रिविधेष्वेन कर्मसु।।68।।
संसार में तीन ही प्रकार के व्यक्ति होते हैं-उत्तम, मध्यम और अधम। उन्हें उनके गुणों के अनुसार ही कार्य सौंपने चाहिए।

त्रय एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुतः।

यत्ते समाधिगच्छान्ते यस्य ते तस्य तद्धनम्।।69।।
पत्नी, पुत्र तथा नौकर-इन तीनों का उसके धन पर अधिकार नहीं होता, जिसके अधीन ये रहते हैं। बल्कि ये तीनों जो भी धन कमाकर अर्पित करते हैं, उस पर भी उसका अधिकार होता है, ये जिसके अधीन होते हैं।

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम्।
सुहृदश्च परित्यागत्रयो दोषाः क्षयावहाः।।70।।
महाराज! दूसरे का धन छीनना, परत्री से संबंध रखना और सच्चे मित्र को त्याग देना, ये तीनों ही भयंकर दोष हैं जो विनाशकारी हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।71।।
काम, क्रोध और लोभ-आत्मा को भष्ट कर देनेवाले नरक के तीन द्वार कहे गए हैं। इन तीनों का त्याग श्रेयस्कर है।

वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च भारत।
शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात् त्रीणि चैकं च तत्समम्।।72।।
हे भारत! वरदान प्राप्त करना, राज्य प्राप्त करना और पुत्र का जन्म-इन तीनों से जो आनंद मिलता है, उससे भी ज्यादा आनंद शत्रु से छुटकारा पाने से प्राप्त है। इसलिए दूसरा वाला सुख पहले वाले से श्रेयस्कर है।

भक्तंक्त च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम्।
त्रीनेतांश्छरणं प्राप्तान् विषमेऽपि न सन्त्यजेत्।।73।।
भक्त, सेवक तथा 'मैं आपका हूँ' कहकर शरण में आए इन तीनों व्यक्तियों को मुसीबत के समय भी नहीं छोड़ना चाहिए।

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन वर्ज्यान्याहु पण्डितस्तानि विद्यात्।
अल्पज्ञै सह मत्रं न कुर्यान्न दीर्घसूत्रै रभसैश्चारणैश्च।।74।।
अल्प बुद्धि वाले, देरी से कार्य करने वाले, जल्दबाजी करने वाले और चाटुकार लोगों के साथ गुप्त विचार-विमर्श नहीं करना चाहिए। राजा को ऐसे लोगों को पहचानकर उनका परित्याग कर देना चाहिए।

चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या।।75।।
भाता! परिवार में सुख-शांति और धन-संपत्ति बनाए रखने के लिए घर के बड़े-बूढ़ों, मुसीबत का मारा कुलीन व्यक्ति, गरीब मित्र तथा निस्तांन बहन को आदर सहित स्थान देना चाहिए। इन चारों की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

चत्वारि हि महाराज साद्यस्कानि बृहस्पतिः।
पृच्छते त्रिदशेन्द्राय तानीमानि निबोध मे।।76।।
राजन! इंद्र के पूछने पर बृहस्पति ने जिन चार बातों को त्वरित फल देनेवाला बताया था, वे बातें मैं आपको बताता हूँ।

देवतानां च सङ्कल्पमनुभावं च धीमताम्।
विनयं कृतविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम्।।77।।
तत्काल फल देने वाली वे चार बाते हैं-देवी-देवताओं का संकल्प, ज्ञानियों का प्रभाव, विद्वानों की सज्जनता तथा पाप-कर्मों का त्याग।

चत्वारि कर्माण्यभयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्यथाकृतानि।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः।।78।।
चार कर्म ऐसे हैं जो भय को दूर करते हैं, लेकिन यदि उन्हें त्रुटिपूर्ण ढंग से किया जाए तो वे भयदायक भी होते हैं। वे चार कर्म हैं-समर्पण भाव से किया गया यज्ञ-हवन, मौन व्रत, स्वाध्याय तथा धर्मानुष्ठान।

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्या प्रयत्नतः।
पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ।।79।।
महाराज! माता, पिता, अग्नि, आत्मा और गुरु इन्हें पंचाग्नि कहा गया है। मनुष्य को इन पाँच प्रकार की अग्नि की सजगता से सेवा-सुश्रुषा करनी चाहिए। इनकी उपेक्षा करके हानि होती है।

पञ्चैव पूजयंल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम्।
देवान् पितॄन् मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान्।।80।।
देवता, पितर, मनुष्य, भिक्षुक तथा अतिथि-इन पाँचों की सदैव सच्चे मन से पूजा-स्तुति करनी चाहिए। इससे यश और सम्मान प्राप्त होता है।

पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि।
मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः।।81।।
महाराज! पाँच लोग छाया की तरह सदा आपके पीछे लगे रहते हैं। ये पाँच लोग हैं-मित्र, शत्रु, उदासीन, शरण देने वाले और शरणार्थी।

पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम्।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृते पात्रादिवोदकम्।।82।।
मनुष्य की पाँचों इंद्रियों में से यदि एक में भी दोष उत्पन्न हो जाता है तो उससे उस मनुष्य की बुद्धि उसी प्रकार बाहर निकल जाती है, जैसे मशक (जल भरने वाली चमड़े की थैली) के छिद्र से पानी बाहर निकल जाता है। अर्थात् इंद्रियों को वश में न रखने से हानि होती है।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता।।83।।
संसार में उन्नति के अभिलाषी व्यक्तियों को नींद, तंद्रा (ऊँघ), भय, क्रोध, आलस्य तथा देर से काम करने की आदत-इन छह दुर्गुणों को सदा के लिए त्याग देना चाहिए।

षडिमान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् ।।84।।
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्।।85।।

राजन! चुप रहने वाले आचार्य, मंत्र न बोलने वाले पंडित, रक्षा में असमर्थ राजा, कड़वा बोलनेवाली पत्नी, गाँव में रहने के इच्छुक ग्वाले तथा जंगल में रहने के इच्छुक नाई-इन छह लोगों को वैसे ही त्याग देना चाहिए जैसे छेदवाली नाव को त्याग दिया जाता है।

षडेव तु गुणाः पुंसां न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः।।86।।

व्यक्ति को कभी भी सच्चाई, दानशीलता, निरालस्य, द्वेषहीनता, क्षमाशीलता और धैर्य-इन छह गुणों का त्याग नहीं करना चाहिए।

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।87।।

धन प्राप्ति, स्वस्थ जीवन, अनुकूल पत्नी, मीठा बोलनेवोली पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र तथा धनार्जन करने वाली विद्या का ज्ञान से छह बातें संसार में सुख प्रदान करती हैं।

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्चर्यं योऽधिगच्छति।
न स पापै कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः।।88।।

जो व्यक्ति मन में घर बनाकर रहनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद (अहंकार) और मात्सर्य (ईर्ष्या) नामक छह शत्रुओं को जीत लेता है, वह जितेंद्रिय हो जाता है। ऐसा व्यक्ति दोषपूर्ण कार्यों, पाप-कर्मों में लिप्त नहीं होता। वह अनर्थों से सदा बचा रहता है।

षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते।
चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः।।89।।
प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः।।90।।

छह प्रकार के व्यक्ति छह प्रकार के व्यक्तियों द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं। सातवें प्रकार के व्यक्ति अनुपलब्ध होते हैं। जैसे कि चोर लापरवाह व्यक्ति द्वारा, चिकित्सक रोगी द्वारा, मतवाली त्रियाँ कामी लोगों द्वारा, पुरोहित यजमानों द्वारा, राजा झगड़ालू लोगों द्वारा और बुद्धिमान लोग मूखर्ों द्वारा अपनी आजीविका कमाते हैं।

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्त्तमतवेक्षणात्।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसङ्गतिः।।91।।

पल भर की भी लापरवाही से खेती, गायें, त्री, सेवा, विद्या तथा नीचों का संग-ये छह चीजें नष्ट हो जाती हैं।

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम्।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम्।।92।।
नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सितम्।।93।।

ये छह लोग सदैव अपने पूर्व हितैषी का अपमान करते हैं-शिक्षा की समाप्ति पर विद्यार्थी अपने शिक्षकों का, विवाहित पुत्र अपनी माँ का, कामपिपासा शांत कर लेने के बाद पुरुष त्री का, अधिकारी काम निकल जाने के बाद सहायकों का, नदी पार कर लेने के बाद पुरुष नाव का तथा स्वस्थ हो जाने के बाद रोगी चिकित्सक का अपमान करते देखे जाते हैं।

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः।
स्वप्रत्ययावृत्तिरभीतवासः षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।94।।
महाराज! स्वस्थ रहना, उऋण रहना, परदेश में न रहना, सज्जनों के साथ मेल-जोल, स्वव्यवसाय द्वारा आजीविका चलाना तथा भययुक्त जीवनयापन-ये छह बातें सांसारिक सुख प्रदान करती हैं।

⁘⁘⁘

ईर्ष्यी घृणी न सन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुखिताः।।95।।
ईर्ष्यालु, घृणा करने वाला, असंतोषी, क्रोधी, सदा संदेह करने वाला तथा दूसरों के भाग्य पर जीवन बिताने वाला-ये छह तरह के लोग संसार में सदा दुखी रहते हैं।

⁘⁘⁘

सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयाः।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः।।96।।
स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम्।
महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च।।97।।
स्त्रियों के प्रति आसक्ति, जुआ, शिकार, मदिरापान, कठोर वाणी, कठोर दंड तथा धन का अपव्यय-ये सात दोष विनाशकारी कहे गए हैं। इन्हें सदा के लिए त्याग देना चाहिए वरना ये बलवान राजा को भी नष्ट कर देते हैं।

⁘⁘⁘

अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः।
ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते।।98।।
ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति।।99।।
नैनान् स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति।
एतान् दोषान्नरः प्राज्ञो बुद्धयेद् बुद्ध्वा विवर्जयेत्।।100।।
राजन! विनाश की ओर बढ़ने वाले व्यक्ति के आठ पूर्व पहचान चिह्न कहे गए हैं-(1) सबसे पहले वह ब्राह्मणों (बुद्धिमानों या ज्ञानियों) से ईर्ष्या-द्वेष करता है, (2) उनका विरोध करता है, (3) उनकी धन-संपत्ति हड़प लेता है, (4) उनकी हत्या का प्रयास करता है, (5) उनकी बुराई से आनंदित होता है, (6) उनकी प्रशंसा से अप्रसन्न होता है, (7) यज्ञ-पूजा-पाठादि में उन्हें आमंत्रित नहीं करता तथा (8) उनके कुछ मांगने पर उनमें दोष निकालता है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को इन दोषों से बचना चाहिए।

⁘⁘⁘

अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत।
वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव स्वसुखान्यपि।।101।।
समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः।
पुत्रेण च परिष्वङ्ग सऽपातश्च मैथुने।।102।।
समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः।
अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि।।103।।
हे धृतराष्ट्र ! ये आठ बातें खुशी की सारभूत तत्त्व कही गई हैं। ये हैं-
(1) मित्रों से मिलन, (2) अधिक धन की प्राप्ति, (3) पुत्र के सीने से लगकर मिलना, (4) रात्रि में स्त्री-पुरुष की साथ-साथ निवृत्ति, (5) समयानुकूल मीठी वाणी बोलना, (6) अपने समाज के लोगों में उन्नति, (7) अभिलषित वस्तु का मिलना तथा (8) जनसभा में सम्मान।

⁘⁘⁘

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्तिक्त कृतज्ञता च।।104।।
बुद्धि, उच्च कुल, इंद्रियों पर काबू, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, कम बोलना, यथाशक्ति दान देना तथा कृतज्ञता-ये आठ गुण मनुष्य की ख्याति बढ़ाते हैं।

⁘⁘⁘

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम्।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः।।105।।

महाराज! जो ज्ञानी नौ दरवाजों (आँख, नाक, कान आदि) वाले, तीन खंभों (वात, पित्त तथा कफरूपी) वाले, पाँच गवाहों (ज्ञानेंद्रियों) वाले जीवात्मा के आवास इस शरीर रूपी घर को जानता है, वह परम ज्ञानी है।

⁘⁘⁘

दश धर्म न जानन्ति धृतराष्ट्र! निबोध तान्।
मत्तः प्रमत्तः उन्मत्तः श्रान्तः क्रद्धो बुभुक्षितः।।106।।
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः।।107।।

दस प्रकार के लोग धर्म-विषयक बातों को महत्त्वहीन समझते हैं। ये लोग हैं-नशे में धुत्त व्यक्ति, लापरवाह, पागल, थका-हारा व्यक्ति, क्रोध, भूख से पीड़ित , जल्दबाज, लालची, डरा हुआ तथा काम पीड़ित व्यक्ति। विवेकशील व्यक्तियों को ऐसे लोगों की संगति से बचना चाहिए। ये सभी विनाश की ओर ले जाते हैं।

⁘⁘⁘

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
पुत्रार्थमसुरेन्द्रेण गीतं चैव सुधन्वना।।108।।

इस बारे में असुरराज प्रह्लाद ने सुधन्वा (विश्वकर्मा) के साथ-साथ अपने पुत्र राजाबलि को भी उपदेश देकर सावधान किया था। विद्वान लोग आज भी उस प्राचीन प्रंग की मिसाल देते हैं।

⁘⁘⁘

यः काममन्यू प्रजहाति राजा पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च।
विशेषविच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी तं सर्वलोकः कुरुते प्रणामम्।।109।।

जो राजा काम और क्रोध जैसे विकारों को पास भी नहीं फटकने देता, सुयोग्य व्यक्तियों की धन देकर सहायता करता है, कार्य की मर्यादा को जानता है, शात्रों का जानकार है और अपने कर्म-कर्तव्य को यथाशीघ पूरा करता है। उसका सब लोग आदर करते हैं।

⁘⁘⁘

जानाति विश्चासयितुं मनुष्यान् विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्।
जानाति मात्रां च तथा क्षमां च तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा।।110।।

जिस राजा पर प्रजा विश्वास करती है, जो अपराधी सिद्ध हुए व्यक्तियों को ही दंडित करता है, जो यह जानता है कि कितना दंड अभीष्ट है तथा जिसे क्षमा का प्रयोग आता हो, लक्ष्मी स्वयं उस राज्य में चली आती है।

⁘⁘⁘

सुदुर्बलं नावजानाति कञ्चित् युक्तक्ताहृय रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम्।
न विग्रं रोचयते बलस्थै काले च यो विक्रमते स धीरः।।111।।

जो किसी कमजोर का अपमान नहीं करता, हमेशा सावधान रहकर बुद्धि-विवेक द्वारा शत्रुओं से निबटता है, बलवानों के साथ जबरन नहीं भिड़ता तथा उचित समय पर शौर्य दिखाता है, वही सच्चा वीर है।

⁘⁘⁘

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचिद् उद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः।
दुखं च काले सहते महात्मा धुरन्धरस्तस्य जिताः सपन्नाः।।112।।

महाराज! जो व्यक्ति मुसीबत के समय भी कभी विचलित नहीं होता, बल्कि सावधानी से अपने काम में लगा रहता है, विपरीत समय में दुखों को हँसते-हँसते सह जाता है, उसके सामने शत्रु टिक ही नहीं सकते; वे तूफान में तिनकों के समान उड़कर छितरा जाते हैं।

⁘⁘⁘

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः पापे सन्धे परदाराभिमर्शम्।
दम्भं स्तैन्य पैशुन्यं मद्यपानं न सेवते यश्च सुखी सदैव।।113।।
जो व्यक्ति अकारण घर के बाहर नहीं रहता, बुरे लोगों की सोहबत से बचता है, परत्री से संबंध नहीं रखता; चोरी, चुगली, पाखंड और नशा नहीं करता-वह सदा सुखी रहता है।

⁘⁘⁘

न संरम्भेणारभते त्रिवर्गमाकारितः शंसति तत्त्वमेव।
न मित्रार्थे रोचयते विवादं नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः।।114।।
जो जल्दबाज़ी में धर्म, अर्थ तथा काम का प्रारंभ नहीं करता, पूछने पर सत्य ही उद्घाटित करता है, मित्र के कहने पर विवाद से बचता है, अनादर होने पर भी दुखी नहीं होता, वही सच्चा ज्ञानवान व्यक्ति है।

⁘⁘⁘

न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति।
नात्याह किञ्चित् क्षमते विवादं सर्वत्र तादृग् लभते प्रशंसाम्।।115।।
जो व्यक्ति किसी की बुराई नहीं करता, सब पर दया करता है, दुर्बल का भी विरोध नहीं करता, बढ़-चढ़कर नहीं बोलता, विवाद को सह लेता है, वह संसार में कीर्ति पाता है।

⁘⁘⁘

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान्।
न मूर्च्छितः कटुकान्याह किञ्चित् प्रिंसदा तं कुरुते जनो हि।।116।।
जो व्यक्ति शैतानों जैसा वेश नहीं बनाता, वीर होने पर भी अपनी वीरता की बड़ाई नहीं करता, क्रोध से विचलित होने पर भी कड़वा नहीं बोलता, उससे सभी प्रेम करते हैं।

⁘⁘⁘

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्या।।117।।
जो ठंडी पड़ी दुश्मनी को फिर से नहीं भड़काता, अहंकाररहित रहता है, तुच्छ आचरण नहीं करता, स्वयं को मुसीबत में जानकर अनुचित कार्य नहीं करता, ऐसे व्यक्ति को संसार में श्रेष्ठ कहकर विभूषित किया जाता है।

⁘⁘⁘

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुखे भवति प्रहृष्टः।
दत्वा न पश्चात्कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः।।118।।
राजन! जो व्यक्ति सुख मिलने पर खुशियाँ नहीं मनाता, दूसरों को दुख में पड़ा देखकर स्वयं आनंदित नहीं होता और दान देकर पछताता नहीं है, वह सदाचारी सत्यपुरुष कहलाता है।

⁘⁘⁘

देशाचारान् समयाञ्चातिधर्मान् बुभूषते यः स परावरज्ञः।
स यत्र तत्राभिगतः सदैव महाजनेस्याधिपत्यं करोति।।119।।
जो व्यक्ति लोक-व्यवहार, लोकाचार, समाज में व्याप्त जातियों और उनके धर्मों को जान लेता है, उसे ऊँच-नीच का ज्ञान हो जाता है। वह जहाँ भी जाता है, अपने प्रभाव से प्रजा पर अधिकार कर लेता है।

⁘⁘⁘

दम्भं मोहं मात्सर्यं पापकृत्यं राजद्विष्टं पैशुं पूगवैरम्।
मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं यः प्रज्ञावान् वर्जयेत् स प्रानः।।120।।
जो व्यक्ति अहंकार, मोह, मात्सर्य (ईर्ष्या), पापकर्म, राजद्रोह, चुगली, समाज से वैर-भाव, नशाखोरी, पागल तथा दुष्टों से झगड़ा बंद कर देता है, वही बुद्धिमान एवं श्रेष्ठ है।

⁘⁘⁘

दानं होमं दैवतं मङ्गलानि प्रायश्चित्तान् विविधान् लोकवादान्।
एतानि यः कुरुत नैत्यकानि तस्योत्थानं देवता राधयन्ति।।121।।

जो व्यक्ति दान, यज्ञ, देव-स्तुति, मांगलिक कर्म, प्रायश्चित्त तथा अन्य सांसारिक कार्यों को यथाशक्ति नियमपूर्वक करता है, देवी-देवता स्वयं उसकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

.:..:..:.

समैर्विवाहः कुरुते न हीनै समै सख्यं व्यवहारं कथां च।
गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः।।122।।

जो व्यक्ति अपनी बराबरी के लोगों के साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार तथा बोलचाल रखता है; गुणवान लोगों को सदा आगे रखता है, वह श्रेष्ठ नीतिवान कहलाता है।

.:..:..:.

मित्रं भुत्तक्तह्य संविभज्याश्रितेभ्यो मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः संस्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः।।123।।

जो व्यक्ति अपने आश्रित लोगों को बाँटकर स्वयं थोड़े से भोजन से ही संतुष्ट हो जाता है, कड़े परिश्रम के बाद थोड़ा सोता है तथा माँगने पर शत्रुओं की भी सहायता करता है-अनर्थ ऐसे सज्जन के पास भी नहीं फटकते।

.:..:..:.

चिकीर्षितं विप्रकृं च यस्य नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किञ्चित्।
मत्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च नाल्पोऽप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः।।124।।

जो व्यक्ति अपने अनुकूल तथा दूसरों के विरुद्ध कार्यों को इस प्रकार करता है कि लोगों को उनकी भनक तक नहीं लगती। अपनी नीतियों को सार्वजनिक नहीं करता, इससे उसके सभी कार्य सफल होते हैं।

.:..:..:.

यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः।
अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये महामणिजात्य इव प्रसन्नः।।125।।

जो व्यक्ति सभी लोगों के काम को तत्पर, सच्चा, दयालु, सभी का आदर करने वाला तथा सात्विक स्वभाव का होता है, वह संसार में श्रेष्ठ रत्न की भाँति पूजा जाता है।

.:..:..:.

य आत्मनाऽपत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत।
अनन्ततेजाः सुमनाः समाहितः स तेजसा सूर्य इवावभासते।।126।।

जो व्यक्ति अपनी मर्यादा की सीमा को नहीं लाँघता, वह पुरुषोत्तम समझा जाता है। वह अपने सात्विक प्रभाव, निर्मल मन और एकाग्रता के कारण संसार में सूर्य के समान तेजवान होकर ख्याति पाता है।

.:..:..:.

वने जाताः शापदग्धस्य राज्ञः पाण्डो पुत्रा पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः।
त्वयैव बाला वर्धिताः शिक्षिताश्च तवादेशंपालयन्त्याम्बिकेय।।127।।

महाराज धृतराष्ट्र! शापग्रस्त राजा पांडु के इंद्र के समाज शक्तिशाली पाँच पुत्र वन में जनमे हैं। बचपन में आपने ही उनका लालन-पालन किया और उन्हें अच्छी शिक्षा दिलाई। वे आपका आदर करते हैं और आपके आज्ञाकारी भी हैं।

.:..:..:.

प्रदायैतेषामुचितं तात राज्यं सुखी पुत्रै सहितो मोदमानः।
न देवानां नापि च मानुषाणां भविष्यसि त्वंतर्कणीयानरेन्द्र।।128।।

महाराज! उनके हिस्से का राज्य उन्हें देकर आप अपने कुटुंब के साथ सुखपूर्वक जीवनयापन कीजिए। केवल यही एक मार्ग है जिससे आप जनता और देवी-देवताओं की आलोचना से बच सकते हैं।

⁘⁘⁘

।।पहला अध्याय समाप्त।।

⁘⁘⁘

❑

2. धृतराष्ट्र उवाच

जाग्रतो दह्यमानस्य यत्कार्यमनुपश्यसि।
तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि।।1।।

धृतराष्ट्र बोले-भाता विदुर! चिंता के कारण मेरे रोम-रोम में आग लगी हुई है, मैं सो नहीं पा रहा हूँ। तुम धर्म और अर्थ की बारीकियाँ जानते हो। मुझे बताओ, क्या करना मेरे लिए ठीक होगा?

⁘⁘⁘

त्वं मां यथावत् विदुर प्रशाधि प्रज्ञापूर्वं सर्वमजातशत्रो।
यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्त्वं श्रेयस्करं ब्रूहि तद्धि कुरूणाम्।।2।।
विदुर! सोच-समझकर जवाब दो। जो बात तुम युधिष्ठिर के हित में और कौरवों के लिए कल्याणकारी समझते हो, उसे बेझिझक बताओ।

⁘⁘⁘

पापाशङ्की पापमेवानुपश्यन् पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाहम्।
कवे तन्मे ब्रूहि सर्वं यथावन्मनीषितं सर्वमजातशत्रो।।3।।
हे ज्ञानी विदुर! अनिष्ट की आशंका से मैं घबराया हुआ हूँ, इसलिए सब ओर मुझे अनिष्ट ही दिखाई पड़ रहा है। मेरा मन बहुत व्याकुल है, इसलिए मैं जानना चाहता हूँ कि युधिष्ठिर का जो भी आशय है, मुझे स्पष्ट बताओ।

⁘⁘⁘

विदुर उवाच

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद् येस्य नेच्छेत्पराभवम्।।4।।
विदुर जवाब देते हुए बोले-हम जिसका बुरा नहीं चाहते, उसके पूछे बिना भी अच्छी-बुरी, कल्याणकारी-अनिष्टकारी सभी बातें साफ-साफ उसे कह देनी चाहिए।

⁘⁘⁘

तस्माद् वक्ष्यामि ते राजन् हितं यत्स्यात् कुरून्प्रति।
वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे।।5।।
राजन! मैं वही बात कहूँगा, जिसमें कौरवों का कल्याण हो। ध्यान से सुनें-मेरी बात धर्मसंगत और व्यापक हितकारी है।

⁘⁘⁘

मिथ्योपेतानि कर्माणि सिध्येयुर्यानि भारत।
अनुपायप्रयुक्तक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः।।6।।
हे धृतराष्ट्र! अनैतिक कार्यों (जुआ, छल आदि) द्वारा जो मनोरथ पूर्ण होते हैं; उनमें अपना मन मत लगाइए।

⁘⁘⁘

तथैव योगविहितं यत्तु कर्म न सिध्यति।
उपाययुक्तक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः।।7।।
इसी प्रकार यदि नैतिक कार्यों द्वारा हमारे मनोरथ पूर्ण न हो; तो बुद्धिमान व्यक्ति को दुखी नहीं होना चाहिए।

⁘⁘⁘

अनुबन्धान् अपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु।
सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत्।।8।।
प्रत्येक कार्य बहुत सोच-विचार करके और उद्देश्य निश्चित करके करना चाहिए। जल्दबाजी में कोई भी कार्य आरंभ नहीं करना चाहिए।

⁘⁘⁘

अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम्।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा।।9।।
मनुष्य को चाहिए कि पहले कार्य का उद्देश्य तय करे, उसके परिणाम का आकलन करे, उससे अपनी उन्नति का विचार करे फिर उसे आरंभ करे।

⁘⁘⁘

यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये।
कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते।।10।।
जो राजा अपने राज्य की स्थिति, लाभ, हानि, खजाना, सेना, प्रजा इत्यादि के विषय में नहीं जानता है, उसका राज्य ज्यादा दिन तक नहीं टिकता।

⁘⁘⁘

यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति।
युक्तश्चाप्यर्थधर्मयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति।।11।।
जो राजा उपर्युक्त के विषय में सबकुछ जानता है तथा धर्म और अर्थ की जानकारी सतत् जुटाता रहता है, उसका राज्य स्थायी रहता है।

⁘⁘⁘

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम्।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम्।।12।।
'अब जो राज्य प्राप्त हो गया'-यह सोचकर अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करेना चाहिए। ऐसे अन्यायी का राजपाट वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे बुढ़ापा रूप-यौवन को नष्ट कर डालता है।

⁘⁘⁘

भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो वडिशमायसम्।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते।।13।।
लोहे के काँटे पर लगे स्वादिष्ट चारे को लोभवश मछली खा तो लेती है, उसके परिणाम के बारे में नहीं सोचती।

⁘⁘⁘

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्ं ग्रस्ं परिणमेच्च यत्।
हितं च परिणामे स्यात् तदाद्यं भूतिमिच्छता।।14।।
इसलिए भला चाहने वाले व्यक्ति को वही वस्तु खानी चाहिऐ जो खाकर ठीक से पच जाए और पचने पर कल्याणकारी हो।

⁘⁘⁘

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति।।15।।
जो व्यक्ति किसी वृक्ष के कच्चे फल तोड़ता है, उसे उन फलों का रस तो नहीं मिलता है, उलटे वृक्ष के बीज भी नष्ट होते हैं।

⁘⁘⁘

यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्।
फलान् रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः।।16।।
लेकिन जो व्यक्ति सही समय पर पके फल तोड़ता है, उसे फलों का रस भी मिलता है और बीज से पुनः फल प्राप्त होते हैं।

⁘⁘⁘

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदध्यादविहिंसया।।17।।

जिस प्रकार भौंरा फूलों को नुकसाने पहुँचाए बिना उनका रस चूसता है, उसी प्रकार राजा को भी प्रजा से कर के रूप में धन इस प्रकार से ग्रहण करना चाहिए कि उसे कष्ट न हो।

⁘⁘⁘

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारामे न यथाऽङ्गारकारकः।।18।।

जैसे बगीचे का माली पौधों से फूल तोड़ लेता है, पौधों को जड़ों से नहीं काटता, इसी प्रकार राजा प्रजा से फूलों के समान कर ग्रहण करे। कोयला बनाने वाले की तरह उसे जड़ से न काटे।

⁘⁘⁘

किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वतः।
इति कर्माणि सञ्चिन्त्य कुर्याद् वा पुरुषो न वा।।19।।

काम को करने से पहले विचार करें कि उसे करने से क्या लाभ होगा तथा न करने से क्या हानि होगी? कार्य के परिणाम के बारे में विचार करके कार्य करें या न करें। लेकिन बिना विचारे कोई कार्य न करें।

⁘⁘⁘

अनारभ्या भवन्त्यर्था केचिन्नित्यं तथाऽगताः।
कृतः पुरुषकारो हि भवेद् येषु निरर्थकः।।20।।

साधारण और बेकार के कामों से बचना चाहिए। क्योंकि उद्देश्यहीन कार्य करने से उन पर लगी मेहनत भी बरबाद हो जाती है।

⁘⁘⁘

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः।।21।।

जो थोथी बातों पर खुश होता हो तथा अकारण ही क्रोध करता हो ऐसे व्यक्ति को प्रजा राजा नहीं बनाना चाहती, जैसे स्त्रियाँ नपुंसक व्यक्ति को पति नहीं बनाना चाहतीं।

⁘⁘⁘

कांश्चिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान्।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान्।।22।।

जिसमें कम संसाधन लगें, लेकिन उसका व्यापक लाभ हो-ऐसे कार्य को बुद्धिमान व्यक्ति शीघ्र आरंभ करता है और उसे निर्विघ्न पूरा करता है।

⁘⁘⁘

ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यति तं प्रजाः।।23।।

जिस राजा की आँखों से प्रजा के लिए प्रेम की वर्षा होती है, उसके न बोलने पर भी प्रजा उससे स्नेह रखती है।

⁘⁘⁘

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारुहः।
अपक्वैः पक्वसङ्काशो न तु शीर्येत कर्हिचित्।।24।।

राजा प्रसन्न रहे चाहे वह प्रजा को अधिक न देता हो, फल से लदे-फदे वृक्ष के समान हो, चाहे उन फलों तक किसी की पहुँच न हो। कम शक्तिशाली होने पर भी स्वयं को पराक्रमी प्रकट करे-ऐसे राजा का राज्य स्थायी

होता है। जिस प्रकार कोई वृक्ष फूलों से भरा हो-चाहे उस पर फल न लगें, फल लगें तो उन्हें तोड़ा न जा सके, फल कच्चे लगते हों लेकिन पके जैसे दिखते हों- ऐसा वृक्ष सदाबहार होता है।

⁘⁘⁘

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति।।25।।

जो राजा नेत्र, मन, वचन और कार्य से अपनी प्रजा को संतुष्ट रखता है, प्रजा उसी से प्रसन्न हो जाती है और उससे कुछ नहीं माँगती।

⁘⁘⁘

यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव।
सागरान्तोमपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते।।26।।

जैसे शिकारी से हिरन भयभीत रहते हैं, उसी प्रकार जिस राजा से उसकी प्रजा भयभीत रहती है, फिर चाहे वह पूरी पृथ्वी का ही स्वामी क्यों न हो, प्रजा उसका परित्याग कर देती है।

⁘⁘⁘

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा।
वायुरभ्रमिवासाद्य भंशयत्यनये स्थितः।।27।।

अन्याय के मार्ग पर चलने वाला राजा विरासत में मिले राज्य को उसी प्रकार से नष्ट कर देता है जैसे तेज हवा बादलों को छिन्न-भिन्न कर देती है।

⁘⁘⁘

धर्ममाचरतो राज्ञः सश्चिरितमादितः।
वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतिवर्धिनी।।28।।

जो राजा सज्जन पुरुषों के कार्यों का अनुसरण करते हुए राजधर्म का पालन करता है, उसका राज्य चतुर्दिक उन्नति करता है।

⁘⁘⁘

अथ सन्त्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः।
प्रसिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा।।29।।

जो राजा अधर्म का आचरण करते हुए अन्यायपूर्वक राज्य करता है, उसका राज्य आग की लपटों में रखे चमड़े की तरह सिकुड़ जाता है।

⁘⁘⁘

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने।
स एव यत्नः कर्तव्य स्वराष्ट्रपरिपालने।।30।।

राजा को दूसरे राज्य को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, बल्कि वह प्रयत्न अपने राज्य की उन्नति के लिए करना चाहिए।

⁘⁘⁘

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते।।31।।

जो राजा धर्म से राज्य प्राप्त करता है और धर्म से ही राज्य चलता है, उस राज्य पर लक्ष्मी की कृपा सदा बनी रहती है।

⁘⁘⁘

अप्युन्मत्तात् प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः।
सर्वतः सारमादद्यात् अश्मभ्य इव काञ्चनम्।।32।।

व्यर्थ बोलनेवाले, मंदबुद्धि तथा बे-सिर-पैर की बोलनेवाले बच्चों से भी सारभूत बातों को ग्रहण कर लेना चाहिए, जैसे पत्थरों में से सोने को ग्रहण कर लिया जाता है।

⁘⁘⁘

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।
सञ्चिन्वन् धीर आसीत शिलाहरी शिलं यथा।।33।।

जैसे साधु-संन्यासी एक-एक दाना जोड़कर जीवन निर्वाह करते हैं, वैसे ही सज्जन पुरुष को चाहिए कि महापुरुषों की वाणी, सूक्तियों तथा सत्कर्मों के आलेखों का संकलन करते रहना चाहिए।

⁘⁘⁘

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदै पश्यन्ति ब्राह्मणाः।
चारै पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः।।34।।

गायें गंध से देखती हैं, ज्ञानी लोग वेदों से, राजा गुप्तचरों से तथा जनसामान्य नेत्रों से देखते हैं।

⁘⁘⁘

भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा।
अथ या सुदुहा राजन् नैव तां वितुदन्त्यपि।।35।।

महाराज! जो गाय कठिनाई से दूध देती है, उसे बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं। जो गाय सरलता से दूध देती है, उसे कोई कष्ट नहीं होता।

⁘⁘⁘

यदतप्तं प्रणमति न तत् सन्तापयन्त्यपि।
यश्च स्वयं नतं दारु न तत् सन्नमयन्त्यपि।।36।।

जो धातु बिना गरम किए मुड़ जाती है, उन्हें आग में तपने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। जो लकड़ी पहले से झुकी होती है, उसे कोई नहीं झुकाता।

⁘⁘⁘

एतयोपमया धीरः सन्नमेत बलीयसे।
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे।।37।।

राजन! बुद्धिमान वही है जो अपने से अधिक बलवान के सामने झुक जाए। और बलवान को देवराज इंद्र की पदवी दी जाती है। अतः इंद्र के सामने झुकना देवता को प्रणाम करने के समान है।

⁘⁘⁘

पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः।
पतयो बान्धवाः त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः।।38।।

पशुओं के रक्षक बादल होते हैं, राजा के रक्षक उसके मंत्री, पत्नियों के रक्षक उनके पति तथा वेदों के रक्षक ब्राह्मण (ज्ञानी पुरुष) होते हैं।

⁘⁘⁘

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुं वृत्तेन रक्ष्यते।।39।।

महाराज! धर्म की रक्षा सत्य से होती है, विद्या की रक्षा अभ्यास से, सौंदर्य की रक्षा स्वच्छता से तथा कुल की रक्षा सदाचार से होती है।

⁘⁘⁘

मानेन रक्ष्यते धान्यमश्चान् रक्षत्यनुक्रमः।
अभीक्ष्णदर्शनं ग्राश्च त्रियो रक्ष्योः कुचैलतः।।40।।

अनाज की रक्षा तौल से होती है, घोड़े की रक्षा उसे लोट-पोट कराते रहने से होती है, सतत् देखरेख से गायों की रक्षा होती है और सादा वस्त्रों से स्त्रियों की रक्षा होती है।

⁘⁘⁘

न कुं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः।
अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते।।41।।
ऊँचे या नीचे कुल से मनुष्य की पहचान नहीं हो सकती। मनुष्य की पहचान उसके सदाचार से होती है, भले ही वह नीचे कुल में ही क्यों न पैदा हुआ हो।

⁘⁘⁘

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः।।42।।
जो व्यक्ति दूसरों की धन-संपत्ति, सौंदर्य, पराक्रम, उच्च कुल, सुख, सौभाग्य और सम्मान से ईर्ष्या व द्वेष करता है, वह असाध्य रोगी है। उसका यह रोग कभी ठीक नहीं होता।

⁘⁘⁘

अकार्यकरणाद् भीतः कार्याणाञ्च विवर्जनात्।
अकाले मत्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत् पिबेत्।।43।।
व्यक्ति को नशीला पेय नहीं पीना चाहिए, अयोग्य कार्य नहीं करनो चाहिए, योग्य कार्य करने में आलस्य नहीं करना चाहिए तथा कार्य सिद्ध होने से पहले उद्घाटित करने से बचना चाहिए।

⁘⁘⁘

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः।।44।।
विद्या का अहंकार, धन-संपत्ति का अहंकार, कुलीनता का अहंकार तथा सेवकों के साथ का अहंकार बुद्धिहीनों को होता है, सदाचारी तो दमन द्वारा इनमें भी शांति खोज लेते हैं।

⁘⁘⁘

असन्तोऽभ्यर्थिताः सक्तिः क्वचित् कार्ये कदाचन।
मन्यन्ते सन्तमात्मानमसन्तमपि विश्रुतम्।।45।।
किसी अवसर पर सज्जनों द्वारा पूजित होने पर दुष्ट और अत्याचारी लोग भी स्वयं को सज्जन समझने का भम पाल लेते हैं।

⁘⁘⁘

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः।
असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः।।46।।
सज्जन पुरुष सबका सहारा होते हैं। सज्जन बुद्धिमानों का सहारा होते हैं, सज्जनों का सहारा होते हैं, दुर्जनों का सहारा होते हैं, लेकिन दुर्जन कभी सज्जनों का सहारा नहीं हो सकते।

⁘⁘⁘

जिता सभा वत्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम्।।47।।
सुंदर वत्र वाला व्यक्ति सभा को जीत लेता है, जिस व्यक्ति के पास गायें हों, वह मिठाई खाने की इच्छा को जीत लेता है; सवारी से चलने वाला व्यक्ति मार्ग को जीत लेता है तथा शीलवान् व्यक्ति सारे संसार को जीत लेता है।

⁘⁘⁘

शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः।।48।।

शील (उत्तम स्वभाव व उत्तम आचरण) ही मनुष्य का प्रमुख गुण है। जिस व्यक्ति का शील नष्ट हो जाता है-धन, जीवन और रिश्तेदार उसके किसी काम के नहीं रहते; अर्थात् उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है।

⁘⁘⁘

आढयानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ।।49।।

महाराज धृतराष्ट्र! धन के अहंकार में डूबे लोगों के भोजन में मांस की, मध्यम वर्ग के लोगों के भोजन में दूध, दही और मक्खन की तथा निर्धन लोगों के भोजन में तैलीय भोजन की प्रधानता होती है।

⁘⁘⁘

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्राः भुञ्जते सदा।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढयेषु सुदुर्लभा।।50।।

निर्धन लोग सदैव स्वादिष्ट भोजन करते हैं, क्योंकि उनकी भूख हर तरह के भोजन को स्वादिष्ट बना देती है। वहीं धनवान लोग भूख के अभाव में स्वादिष्ट व्यंजनों का भी मजा लेने से वंचित रह जाते हैं।

⁘⁘⁘

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुंक्त शक्तिक्तर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते।।51।।

राजन! प्रायः धनवान लोगों में खाने और पचाने की शक्ति नहीं होती और निर्धन लकड़ी खा लें तो उसे भी पचा लेते हैं।

⁘⁘⁘

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद् भयम्।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात् परं भयम्।।52।।

निम्न वर्ग के लोगों को आजीविका के चले जाने का भय रहता है, मध्यमे वर्ग के लोगों को मृत्यु का भय सताता रहता है, लेकिन उत्तम वर्ग के लोगों को केवल अपमान का भय होता है।

⁘⁘⁘

ऐश्चर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः।
ऐश्चर्यमदमत्तो हि नापतित्त्वा विबुध्यते।।53।।

यूँ तो शराब पीने से भी नशा होता है, लेकिन प्रभुत्व का नशा बहुत बुरा होता है। प्रभुत्व का नशा अधिकार छिनने के बाद ही उतरता है।

⁘⁘⁘

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहै।
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव।।54।।

इंद्रियाँ यदि वश में न हों तो ये विषय-भोगों में लिप्त हो जाती हैं। उससे मनुष्य उसी प्रकार तुच्छ हो जाता है, जैसे सूर्य के आगे सभी ग्रह।

⁘⁘⁘

यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा।
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट्।।55।।

राजन! जो व्यक्ति इंद्रियों को जीतने के बजाय स्वयं उनका गुलाम बन जाता है, उसकी मुसीबतें शुक्ल पक्ष के चंद्रमा की तरह बढ़ती जाती हैं।

⁘⁘⁘

अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते।
अमित्रान् वाऽजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते।।56।।

जो राजा अपनी इंद्रियों और मन को जीते बिना अपने मंत्रियों को जीतना चाहता है तथा मंत्रियों को जीते बिना अपने शत्रुओं को जीतना चाहता है, उसका नष्ट होना अवश्यंभावी है।

⁘⁘⁘

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण यो जयेत्।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते।।57।।

जो राजा अपनी इंद्रियों व मन को अपना शत्रु समझकर उन्हें जीत लेता है, फिर अपने मंत्रियों और शत्रुओं को जीतने का प्रयास करता है तो उसे सफलता मिलती है।

⁘⁘⁘

वश्येन्द्रिं जिताऽत्मानं धृतदण्डं विकारिषु।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते।।58।।

जिसकी इंद्रियाँ व मन वश में है; जो दोषियों को समुचित दंड देता है, जो प्रत्येक कार्य को जाँच-परखकर करता है-ऐसे राजा के राज्य में लक्ष्मी की कृपा सदा बनी रहती है।

⁘⁘⁘

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्चाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तै सुखं याति रथीव धीरः।।59।।

महाराज! यह मानव-शरीर रथ है, आत्मा (बुद्धि) इसका सारथी है, इंद्रियाँ इसके घोड़े हैं। जो व्यक्ति सावधानी, चतुराई और बुद्धिमानी से इनको वश में रखता है, वह श्रेष्ठ रथवान की भाँति संसार में सुखपूर्वक यात्रा करता है।

⁘⁘⁘

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम्।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम्।।60।।

जैसे बेकाबू और अप्रशिक्षित घोड़े मूर्ख सारथी को मार्ग में ही गिराकर मार डालते हैं; वैसे ही यदि इंद्रियों को वश में न किया जाए तो ये मनुष्य की जान की दुश्मन बन जाती हैं।

⁘⁘⁘

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुखं मन्यते सुखम्।।61।।

अज्ञानी लोग इंद्रिय-सुख को ही श्रेष्ठ समझकर आनंदित होते हैं। इस प्रकार के अनर्थ को अर्थ और अर्थ को अनर्थ कर देते हैं और अनायास ही नाश के मार्ग पर चल पड़ते हैं।

⁘⁘⁘

धर्मार्थौं यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते।।62।।

जो व्यक्ति धर्म और अर्थ का मार्ग छोड़कर इंद्रियों के वशीभूत हो जाता है, वह जल्दी ही ऐश्वर्य, धन, पत्नी तथा जीवन से भी हाथ धो बैठता है।

⁘⁘⁘

अर्थानामीश्चरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्चरः।
इन्द्रियाणामनैश्चर्यादैश्चर्याद् भश्यते हि सः।।63।।

जो धनकुबेर होने के बावजूद इंद्रियों को अपने नियंत्रण में नहीं रखता, इस दुष्प्रवृत्ति के कारण वह श्रीहीन हो जाता है।

⁘⁘⁘

आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतै।

आत्मा ह्यवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।64।।

राजन! मन-बुद्धि तथा इंद्रियों को आत्म-नियंत्रित करके स्वयं ही अपने आत्मा को जानने का प्रयत्न करें, क्योंकि आत्मा ही हमारा हितैषी और आत्मा ही हमारा शत्रु है।

.:..:..:.

बन्धुरात्माऽऽमनस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना जितः।
स एव नियतो बन्धु स एव नियतो रिपु।।65।।

जो व्यक्ति अपने आत्मा को जीत लेता है तो वह आत्मा ही उसका हितैषी (बंधु-शुभचिंतक) बन जाता है। राजन! आत्मा ही एकमात्र हितैषी और आत्मा ही एकमात्र शत्रु है।

.:..:..:.

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू।
कामश्च राजन् क्रोध श्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः।।66।।

महाराज! जैसे जाल में फँसी दो बड़ी मछलियाँ मिलकर उस जाल को काट देती हैं; वैसे ही काम और क्रोध मिलकर विवेकशील ज्ञान को नष्ट कर देते हैं।

.:..:..:.

समवेक्ष्येह धर्मार्थौं सम्भारान् योऽधिगच्छति।
स वै सम्भृतसम्भारः सततं सुखमेधते।।67।।

जो व्यक्ति धर्म और अर्थ के बारे में भली-भाँति विचार करके न्यायोचित रूप से अपनी समृद्धि के साधन जुटाता है, उसकी समृद्धि बराबर बढ़ती रहती है और वह सुख साधनों का भरपूर उपभोग करता है।

.:..:..:.

यः पञ्चभ्यन्तरान् शत्रूनविजित्य मनोमयान्।
जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम्।।68।।

जो व्यक्ति मन को विचारग्रस्त करने वाले पाँच इंद्रियों के रूप में शरीर के भीतरी रहने वाले शत्रुओं को जीते बिना ही बाहरी शत्रुओं को जीतना चाहता है, उसे शत्रु पराजित कर देते हैं।

.:..:..:.

दृश्यन्ते हि महात्मानो वध्यमानाः स्वकर्मभिः।
इन्द्रियाणामनीशत्वात् राजानो राज्यविभमै।।69।।

इंद्रियों पर नियंत्रण न होने के कारण बड़े-बड़े संत-मुनि भी सांसारिक कार्यों में तथा राजा लोग भोग-विलास में फँसे रहते हैं।

.:..:..:.

असन्त्यागात् पापकृतामपापांस्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात्।
शुष्केणार्द्रंदह्यते मिश्रभावात्तस्मात्पापै सह सन्धिं नकुर्य्यात्।।70।।

दुर्जनों की संगति के कारण निरपराधी भी उन्हीं के समान दंड पाते हैं; जैसे सूखी लकड़ियों के साथ गीली भी जल जाती हैं। इसलिए दुर्जनों के साथ मैत्री नहीं करनी चाहिए।

.:..:..:.

निजानुत्पततः शत्रून् पञ्च पञ्चप्रयोजनान्।
यो मोहान्न निगृह्णति तमापद् ग्रसते नरम्।।71।।

जो व्यक्ति अपनी बेलगाम पाँचों इंद्रियों को गलत मार्ग पर चलने से नहीं रोकता, उसका नाश हो जाता है।

.:..:..:.

अलुसरऽऽर्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम्।।72।।

अच्छाई में बुराई न देखना, सरलता, पवित्रता, संतुष्टि, मीठे बोल, जितेंद्रियता, सच्चाई और दृढ़ता ये गुण दुष्टों में नहीं होते।

⁘⁘⁘

आत्मज्ञानमनायासरिस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
वाक्त चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत।।73।।
राजन! दुर्जन लोगों में आत्मज्ञान, सहनशक्ति, धर्म-परायणता, वचनबद्धता, दानशीलता, दुखहीनता, रक्षा का भाव आदि जैसे सद्गुण नहीं होते।

⁘⁘⁘

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान्।
वत्तक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते।।74।।
मूर्ख लोग ज्ञानियों को बुरा-भला कहकर उन्हें दुख पहुँचाते हैं। इस पर भी ज्ञानीजन उन्हें माफ कर देते हैं। माफ करने वाला तो पाप से मुक्त हो जाता है और निंदक को पाप लगता है।

⁘⁘⁘

हिंसाबबलमसाधूनां राज्ञा दण्डविधिर्बलम्।
शुश्रूषा तु बलं त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम्।।75।।
हिंसा दुष्ट लोगों का बल है, दंडित करना राजा का बल है, सेवा करनो त्रियों का बल है और क्षमाशीलता गुणवानों का बल है।

⁘⁘⁘

वाक्संयमो हि नृपते! सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रञ्च न शक्यं बहु भाषितुम्।।76।।
महाराज! वाणी पर पूरा संयम बरतना तो बहुत मुश्किल है, लेकिन चमत्कोरपूर्ण और विशेष अर्थों से युक्त बात भी अधिक नहीं बोली जा सकती।

⁘⁘⁘

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता।
सैव दुर्भाषिता राजन्नर्थायोपपद्यते।।77।।
मीठे शब्दों में बोली गई बात हितकारी होती है और उन्नति के मार्ग खोलती है, लेकिन यदि वही बात कटुतापूर्ण शब्दों में बोली जाए तो दुखदायी होती है और उसके दूरगामी दुष्परिणाम होते हैं।

⁘⁘⁘

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुत्तंक्त बीभत्सं न संरोहति वाक्षतम्।।78।।
बाणों से छलनी और फरसे से काटा गया जंगल पुनः हरा-भरा हो जाता है, लेकिन कटु-वचन से बना घाव कभी नहीं भरता।

⁘⁘⁘

कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः।।79।।
शरीर के भीतर तक धँसे लोहे के भयानक बाण को खींचकर बाहर निकाला जा सकता है, लेकिन कड़वे शब्द बाण को कदापि नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि वह हृदय के भीतर जाकर धँस जाता है।

⁘⁘⁘

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य नाममर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः।।80।।

शब्द रूपी बाण सीधा दिल पर जाकर लगता है, जिससे पीड़ित व्यक्ति दिन-रात घुलता रहता है। इसलिए ज्ञानियों को चाहिए कि वे कटु वचन बोलने से बचें।

⁘⁘⁘

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति।।81।।

जिसके भाग्य में पराजय लिखी है, ईश्वर उसकी बुद्धि पहले ही हर लेते हैं, इससे उस व्यक्ति को अच्छी बातें नहीं दिखाई देतीं, वह केवल बुरा-ही-बुरा देख पाता है।

⁘⁘⁘

बुद्धो कलूषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते।
अनयो नयसङ्काशो हृदयान्नावसर्पति।।82।।

विनाशकाल के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है। ऐसे व्यक्ति के मन में न्याय के स्थान पर अन्याय घर कर लेता है। वह अन्याय के आसरे ही सब निर्णय लेता है।

⁘⁘⁘

सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ।
पाण्डवानां विरोधेन न चैनानवबुध्यसे।।83।।

हे भरतश्रेष्ठ! आपके पुत्रों की न्यायपूर्ण बुद्धि अन्याय के तले दब गई है। पांडवों से वैर के कारण आप भी अपने पुत्रों की वास्तविकता को नहीं देख पा रहे हैं।

⁘⁘⁘

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलेक्यस्यापि यो भवेत्।
शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः।।84।।

महाराज! युधिष्ठिर आपका आज्ञाकारी है और सभी राज-लक्षणों से युक्त है। वह त्रिलोक का भी शासक बनने के योग्य है और वही इस राज्य का राजा बनने योग्य है।

⁘⁘⁘

अतीव सर्वान् पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः।
तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तक्ताह्य धर्मार्थतत्त्ववित्।।85।।

वह धर्म और अर्थ के तत्त्वों को भली-भाँति जानता है। बुद्धिमान, तेजस्वी और पराक्रम में आपके सभी पुत्रों से श्रेष्ठ है।

⁘⁘⁘

अनुक्रोशादानृशंस्याद् योऽसौ धर्मभृतां वरः।
गौरवात् तव राजेन्द्र बहून् क्लेशांस्तितिक्षते।।86।।

राजन! धर्मनिष्ठ युधिष्ठिर दयालु है और आपका आदर करता है, इसलिए वन में इतने कष्ट भोग रहा है।

⁘⁘⁘

।। दूसरा अध्याय समाप्त।।

❑

3. धृतराष्ट्र उवाच

बूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे।।1।।

धृतराष्ट्र ने कहा-विदुर! तुम बहुत अच्छी बातें बता रहे हो, लेकिन अभी मेरा मन शांत नहीं हुआ। मुझे और खोलकर बताओ।

⁘⁘⁘

विदुर उवाच

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्।
उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते।।2।।

विदुर बोले-सभी तीर्थ-स्थलों में स्नान करना तथा प्राणिमात्र के प्रति दया का भाव रखना इन दोनों बातों का समान पुण्य मिलता है, लेकिन इनमें दयाभाव श्रेष्ठ है।

⁘⁘⁘

आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो।
इह कीर्तिं परा प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि।।3।।

महाराज! आप आपने पुत्रों-कौरवों तथा पांडवों-दोनों के साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार कीजिए। इससे इस संसार में आपकी कीर्ति बढ़ेगी तथा मृत्यु के बाद आपको स्वर्ग में स्थान मिलेगा।

⁘⁘⁘

यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोके प्रगीयते।
तावत् स पुरुषव्याघ स्वर्गलोके महीयते।।4।।

राजन! जब तक पृथ्वी पर मुनष्य के सेद्कर्मों का गुणगान होता है, तब तक वह स्वर्ग में भी पूजा जाता है।

⁘⁘⁘

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
विरोचनस्य संवादं केशिन्यर्थे सुधन्वना।।5।।

इस विषय में एक प्राचीन कथा का उदाहरण अकसर दिया जाता है जो विरोचन, केशिकी और सुधन्वा के बारे में है।

⁘⁘⁘

स्वयंवरे स्थिता कन्या केशिनी नाम नामतः।
रूपेणाप्रतिमा राजन् विशिष्टपतिकाम्यया।।6।।

पुरानी बात है, केशिनी नाम की एक खूबसूरत कन्यो के स्वयंवर का आयोजन किया गया। वह उत्तम पति का वरण करना चाहती थी।

⁘⁘⁘

विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा तत्राजगाम ह।
प्राप्तुमिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येन्द्रं प्राह केशिनी।।7।।

इसी स्वयंवर सभा में प्रह्लाद का पुत्र राक्षसराज विरोचन भी आया। वह केशिनी से विवाह करना चाहता था। उसकी इच्छा जानकर दोनों आपस में बातें करने लगे।

⁘⁘⁘

केशिन्युवाच

किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांसो दितिजाः स्विद् विरोचन।
अथ केन स्म पर्यङ्कं सुधन्वा नाधिरोहति।।8।।

केशिनी ने पूछा-हे विरोचन! ब्राह्मण सदाचारी होते हैं या राक्षस? यदि ब्राह्मण सदाचारी होते हैं तो मैं क्यों न सुधन्वा से विवाह करूँ?

⁘⁘⁘

विरोचन उवाच

प्राजापत्यास्तु वै श्रेष्ठा वयं केशिनि सत्तमाः।
अस्माकं खल्विमे लोकाः के देवाः के द्विजातयः।।9।।

विरोचन बोला-हे सुंदरी! हम राक्षक लोग प्रजापति ब्रह्मा की श्रेष्ठ संतानें हैं। हमारे सामने ब्राह्मण तो क्या देवता भी तुच्छ हैं।

⁘⁘⁘

केशिन्युवाच

इहैवावां प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन।
सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ।।10।।

केशिनी ने कहा-विरोचन! ब्राह्मण सुधन्वा प्रातः आएँगे। हमें उनके आगमन की प्रतीक्षा करनी चाहिए। जब आप दोनों साथ होंगे, तब इस विषय में बात करेंगे।

⁘⁘⁘

विरोचन उवाच

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे।
सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टासि सङ्गतौ।।11।।

विरोचन बोला-सुकुमारी! यही ठीक रहेगा। प्रातः सुधन्वा के आने पर हम फिर मिलेंगे।

⁘⁘⁘

विदुर उवाच

अतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमण्डले।
अथाजगाम तं देशं सुधन्वा राजसत्तम।।12।।
विरोचनो यत्र विभो कैशिन्या सहितः स्थितः।
सुधन्वा च समागच्छत् प्राह्लादिं केशिनीं तथा।।13।।

विदुर बोले-महाराज धृतराष्ट्र! प्रातः नियत समय पर सुधन्वा आ गए और पूर्व निश्चित स्थान पर वे केशिनी और विरोचन से मिले।

⁘⁘⁘

समागतं द्विजं दृष्ट्वा केशिनी भरतर्षभ।
प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घ्यं ददौ पुनः।।14।।

राजन! ब्राह्मण सुधन्वा को देख केशिनी ने उनका विधिनुसार यथोचित आदर-सत्कार किया और उनसे विरोचन के साथ बैठने का आग्रह किया।

⁘⁘⁘

सुधन्वोवाच

अन्वालभे हिरण्मयं प्राह्लादे ते वरासनम्।

एकत्वमुपसम्पन्नो न त्वासेऽहं त्वया सह।।15।।
सुधन्वा बोले-हे प्रह्लादनंदन! मैं तुम्हारे साथ इस स्वर्ण-सिंहासन पर बैठ नहीं सकता, इसे केवल स्पर्श कर लेता हूँ। साथ बैठने पर मैं भी तुम जैसा हो जाऊँगा।

⁘⁘⁘

विरोचन उवाच

तवार्हते तु फलकं कूर्चं वाप्यथवा बृसी।
सुधन्वन्न त्वमर्होऽसि मया सह समासनम्।।16।।
विरोचन ने कहा-ब्राह्मण सुधन्वा! तुम्हारे लिए घास-फूस की चटाई या पीढ़ा ही उचित है। तुम उसी पर बैठने के योग्य हो।

⁘⁘⁘

सुधन्वोवाच

पितापुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि।
वृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतम्।।17।।
सुधन्वा बोले-पिता-पुत्र, दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो बूढ़े तथा दो शूद्र एक साथ एक ही आसन पर आसीन हो सकते हैं। इनके अलावा अन्य लोगों के साथ बैठने की शास्त्रों में मनाही है।

⁘⁘⁘

पिता हि ते समासीनमुपासीतैव मामधः।
बालः सुखैधितो गेहे न त्वं किञ्चन बुद्धयसे।।18।।
विरोचन! तुम अभी अबोध हो। ऐश्वर्य में पले-बढ़े हो। अभी तुम्हें सांसारिक बातों का ज्ञान नहीं है। तुम्हें यह भी नहीं पता कि तुम्हारे पिता प्रह्लाद मुझे आसन पर बैठाकर स्वयं नीचे बैठकर मेरी सेवा करते हैं।

⁘⁘⁘

विरोचन उवाच

हिरण्यं च गवाश्वं च यदिवत्तमसुरेषु नः।
सुधन्वन् विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदु।।19।।
विरोचन बोला-हे सुधन्वन्! मैं अपने राज्य के पूरे स्वर्ण, गायों, घोड़ों, पशुओं व अन्य धन-संपत्ति की बाजी लगाता हूँ। हमें किसी विद्वान से चलकर पूछना चाहिए कि हममें से श्रेष्ठ कौन है।

⁘⁘⁘

सुधन्वोवाच

हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन।
प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदु।।20।।
सुधन्वा बोले-तुम्हारा सोना, गायें, घोड़े आदि संपत्ति तुम्हारे पास ही रहे। हम प्राण की बाजी लगाकर इस बारे में किसी विद्वान से निर्णय कराएँ।

⁘⁘⁘

विरोचन उवाच

आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्पिणे कृते।
न तु देवेष्वहं स्थाता न मनुष्येषु कर्हिचित्।।21।।
विरोचन बोला-ठीक है, लेकिन हम निर्णायक किसे बनाएँ। मैं न देवताओं को इस योग्य समझता हूँ, न मनुष्यों को। क्योंकि ये दोनों ही मेरी दृष्टि में अत्यंत तुच्छ हैं।

⁘⁘⁘

सुधन्वोवाच

पितरं ते गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते।
पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृं वदेत्।।22।।

सुधन्वा बोले-फिर ठीक है। हम तुम्हारे पिता के पास चलते हैं। उन्हें निर्णायक बनाएँगे। मुझे विश्वास है, पुत्र मोह में वे झूठ नहीं बोलेंगे।

⁘⁘⁘

विदुर उवाच

एवं कृतपणौ क्रुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा।
विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति।।23।।

विदुर बोले-महाराज धृतराष्ट्र! यह निश्चय कर सुधन्वा और विरोचन प्रह्लाद के महल की ओर चल दिए। दोनों ही क्रोधमद से फुफकार रहे थे।

⁘⁘⁘

प्राह्लाद उवाच

इमौ तौ सम्प्रदृश्येते याभ्यां न चरितं सह।
आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गाविहागतौ।।24।।

उन्हें देख प्रह्लाद विचार करने लगे-ये दोनों कभी स्थिर नहीं रहे, आज आग उगलते हुए साथ-साथ कैसे चले आ रहे हैं?

⁘⁘⁘

किं वै सहैवं चरथो न पुरा चरथः सह।
विरोचनैतत् पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वना।।25।।

प्रह्लाद ने विरोचन से पूछा-तुम्हारी क्या ब्रह्मण सुधन्वा से मैत्री हो गई है जो दोनों साथ-साथ आ रहे हो? पहले कभी तुम्हें साथ नहीं देखा?

⁘⁘⁘

न मे सुधन्वना सख्यं प्राणयोऽन्वपणावहे।
प्रह्लाद तत्त्वं पृच्छामि मा प्रश्नमनृं वदे।।26।।

विरोचन बोला-पिताश्री! हम मित्र नहीं बने हैं। एक प्रश्न के निर्णय के लिए हमने प्राणों की बाजी लगाई है। आप मेरे प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर दीजिए।

⁘⁘⁘

प्रह्लाद उवाच

उदकं मधुपर्कं वाऽप्यानयन्तु सुधन्वने।
ब्रह्मन्नभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौ पौंवरीकृता।।27।।

प्रह्लाद ने सुधन्वा का स्वागत करते हुए कहा-ब्राह्मण देवता! मेरा पूजन और आतिथ्य स्वीकार करें और मुझे आशीर्वचन दें। दानार्थ आपके लिए उत्तम गाय प्रस्तुत है।

⁘⁘⁘

सुधन्वोवाच

उदकं मधुपर्कं च पषिष्वेवार्पितं मम।
प्रह्लाद त्वं तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि पृच्छतः।
किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांस उताहो स्विद्विरोचनः।।28।।

सुधन्वा बोले-दैत्यराज प्रह्लाद! ये सब तो ठीक है, लेकिन पहले आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें कि-ब्राह्मण (सुधन्वा) श्रेष्ठ है या राक्षस (विरोचन)?

प्रह्लाद उवाच

पुत्र एको मम ब्रंस्त्वं च साक्षादिहास्थितः।
तयोर्विवदतो प्रश्नं कथमस्मद्विधो वदेत्।।29।।

हे ब्राह्मण! मैं विरोचन का पुत्र हूँ जो तुम्हारा विरोधी है इस दृष्टि से मैं भी तुम्हारा विरोधी हुआ। किर मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर कैसे दे सकता हूँ।

सुधन्वोवाच

गां प्रदद्यास्त्वौरसाय यद्वाऽन्यत् स्यात् प्रिं धनम्।
द्वयोर्विवदतोस्तथ्यं वाच्यं च मतिमंस्त्वया।।30।।

सुधन्वा बोले-हे प्रह्लाद! अपनी गायें और बाकी सारा धन अपने पुत्र विरोचन को दे दें। मुझे बस मेरे प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर दें। आपको हमने अपना निर्णायक तय किया है, इसलिए आपको हमारी जिज्ञासा शांत करनी चाहिए।

प्रह्लाद उवाच

अथ यो नैव प्रब्रूयात् सत्यं वा यदि वाऽनृतम्।
एतत् सुधन्वन् पृच्छामि दुर्विवत्तक्ता स्म किं वसेत्।।31।।

प्रह्लाद ने कहा-अच्छा पहले मेरी बात का जवाब दो; जो व्यक्ति झूठ बोले, गलत निर्णय दे, उसकी क्या दशा होती है?

सुधन्वोवाच

यां रात्रिमधिविन्ना त्री यां चैवाक्षपराजितः।
यां च भाराभितप्ताङ्ग दुर्विवत्तक्ता स्म तां वसेत्।।32।।

सुधन्वा बोले-जैसे परित्यक्ता त्री रात्रि में पति के साथ अपनी सौतन को देखकरे बेचैन होती है, हारा हुआ जुआरी बेचैनी से रात में करवटें बदलता रहता है, दिन भर भारी बोझा ढोने वाले व्यक्ति को थकान के मारे रात को ठीक से नींद नहीं आती, झूठ बोलने वाले और गलत निर्णय देने वाले की भी यही हालत होती है।

नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिर्द्वारि बुभुक्षितः।
अमित्रान् भूयसः पश्येत् यः साक्ष्यमनृं वदेत्।।33।।

जो व्यक्ति झूठा निर्णय देता है, उसे नगर से बाहर निकाल दिया जाता है। वेह बहुत से शत्रुओं से घिरकर भूखा-प्यासा भटकता रहता है।

पञ्च पश्चनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते।
शतमश्चनृते हन्ति सहस्त्रं पुरुषानृते।।34।।

हे प्रह्लाद! पशुओं के लिए झूठ बोलने वाला अपनी पाँच पीढ़ियों को, गायों के लिए झूठ बोलने वाला अपनी दस पीढ़ियों को, घोड़ों के लिए झूठ बोलने वाला अपनी सौ पीढ़ियों को तथा मनुष्यों के लिए झूठ बोलने वाला अपनी एक हजार पीढ़ियों को नरकवासी बना देता है।

हन्ति जाता न जातांश्च हिरण्यार्थेऽनृं वदन्।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृं वदे।।35।।
स्वर्ण के लिए असत्य बोलनेवाला व्यक्ति भूत-पिशाच बनता है और उसकी आगे आनेवाली सारी वंशावली नरक में गिरती है। भूमि (केशिनी) के लिए झूठ बोलनेवाले का सर्वनाश हो जाता है, इसलिए आप समझदारी से काम लें।

⁘⁘⁘

प्रह्लाद उवाच

मत्तः श्रेयान् अङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद् विरोचन।
माताऽस्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्त्वं तेन वै जितः।।36।।
प्रह्लाद ने कहा-विरोचन! सुधन्वा के पिता अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं; सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ है, सुधन्वा की माँ तुम्हारी माँ से श्रेष्ठ है; अतः पुत्र विरोचन, तुम सुधन्वा से हार गए।

⁘⁘⁘

विरोचन सुधन्वाऽयं प्राणानामीश्चरस्तव।
सुधन्वन् पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम्।।37।।
विरोचन! अब सुधन्वा तुम्हारे प्राणों का मालिक है। हे सुधन्वा! मैं विरोचन को खोना नहीं चाहता। इसको प्राणदान दो।

⁘⁘⁘

सुधन्वोवाच

यदधर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृं वदी।
पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात् प्रह्लाद दुर्लभम्।।38।।
सुधन्वा बोले-हे प्रह्लाद! आपने पुत्र के मोह में भी धर्म के मार्ग को नहीं छोड़ा। आपने सत्य की रक्षा की है, इसलिए मैं आपके पुत्र को वापस आपको सौंपता हूँ।

⁘⁘⁘

एषः प्रह्लादपुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः।
पादप्रक्षालनं कुर्यात् कुमार्या सन्निधौ मम।।39।।
अब यह विरोचन केशिनी के पास चलकर मेरे पैर धोए और मेरी श्रेष्ठता स्वीकार करे।

⁘⁘⁘

विदुर उवाच

तस्माद्राजेन्द्र! भूम्यर्थे नानृं वक्तव्यमर्हसि।
मा गमः ससुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमब्रुवन्।।40।।
विदुर बोले-इसलिए हे धृतराष्ट्र, राज्य के लिए झूठ बोलना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। पुत्र-मोह में झूठ बोलकर आप कुटुंब और मंत्रियों सहित नष्ट हो जाएँगे, यह निश्चित है। इससे बचें।

⁘⁘⁘

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संविभजन्ति तम्।।41।।
देवी-देवता जिसकी रक्षा करना चाहते हैं; उसे बुद्धि दे देते हैं; डंडा लेकर उसके पीछे पहरा नहीं देते।

⁘⁘⁘

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।

तथा तथाऽस्य सर्वार्था सिद्धयन्ते नात्र संशयः।।42।।
शुभ और कल्याणकारी कार्यों में लगे व्यक्ति के सभी मनोरथ, सभी उद्देश्य पूरे होते रहते हैं। यह बात संदेह से परे है।

⁘⁘⁘

नैनं छन्दांसि वृजनात् तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम्।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले।।43।।
दुर्जन और कपटी व्यवहार करने वाले व्यक्ति की उसके पुण्य कर्म भी रक्षा नहीं कर पाते। जैसे पंख निकल आने पर पंछी घोसले को छोड़ देते हैं; वैसे ही अंत समय में पुण्य कर्म भी उसका साथ छोड़ देते हैं।

⁘⁘⁘

मद्यपानं कलहं पूगवैरं, भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम्।
राजद्विष्टं त्रीपुंसयोर्विवादं, वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः।।44।।
मदिरापान, झगड़ना, जाति-बंधुओं से वैर, पति-पत्नी में झगड़ा कराना, नाते-रिश्तेदारों में भेदभाव करना, राजा से वैर रखना तथा गलत मार्ग पर चलना-ये सब नाश के साधक हैं, इसलिए इन्हें त्याग देना चाहिए।

⁘⁘⁘

सामुद्रिं वणिजं चोरपूर्वं शलाकधूर्त्तं च चिकित्सकं च।
अरिं च मित्रं च कुशीलवं च नैतान्साक्ष्ये त्वधिकुर्वीतसप्त।।45।।
हस्तरेखा व शरीर के लक्षणों के जानकार को, चोर व चोरी से व्यापारी बने व्यक्ति को, जुआरी को, चिकित्सक को, मित्र को तथा सेवक को-इन सातों को कभी अपना गवाह न बनाएँ, ये कभी भी पलट सकते हैं।

⁘⁘⁘

मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं, मानेनाधीमुत मानयज्ञः।
एतानि चत्वार्यभयङ्करणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि।।46।।
समर्पण भाव से किया गया यज्ञ, मौन-व्रत, स्वाध्याय तथा धर्मानुष्ठान-ये चार कर्म ऐसे हैं जो भय को दूर करते हैं, लेकिन यदि इन्हें त्रुटिपूर्ण ढंग से किया जाए तो ये भयदायक भी होते हैं।

⁘⁘⁘

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी।
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक्त पारदारिकः।।47।।
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्चं स्यात् पानपो द्विजः।
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः।।48।।
स्तुवप्रग्रहणो व्रात्यः कीनाशश्चात्मवानति।
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात् सर्वे ब्रह्महभिः समाः।।49।।
दूसरों के घरों में आग लगाने वाला, जहर देने वाला, सर्वभक्षी, मदिरा विक्रेता, अत्र-शत्र निर्माता, चुगलखोर, मित्र से विश्वासघात करनेवाला, चरित्रहीन, उदरस्थ शिशु का हत्यारा, गुरुपत्नी व परत्रीगामी, ब्राह्मण होकर मदिरापान करनेवाला, महाक्रोधी, कौए की तरह कर्कश, नास्तिक, धर्म-शात्रों का निंदक, पतित, कठोर, अत्याचारी तथा रक्षण के स्थान पर भक्षण करना-ये स्भी लोग ब्रह्म हत्यारे के समान कहे गए हैं।

⁘⁘⁘

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधु।
शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च।।50।।
आग में तपाकर सोने की, सदाचार से सज्जन की, व्यवहार से संत पुरुष की, संकट काल में योद्धा की, आर्थिक संकट में धीर की तथा घोर संकट काल में मित्र और शत्रु की पहचान होती है।

⁘⁘⁘

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्यु प्राणान् धर्मचर्यामसूया।

क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः।।51।।
वृद्धावस्था खूबसूरती को नष्ट कर देती है, उम्मीद धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, निंदा धर्मपूर्ण व्यवहार को, क्रोध आर्थिक उन्नति को, दुर्जनों की सेवा सज्जनता को, काम-भाव लाज-शर्म को तथा अहंकार सबकुछ नष्ट कर देता है।

⁘⁘⁘

श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् सम्प्रवर्धते।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतिष्ठिति।।52।।
अच्छे कर्मों से धन लक्ष्मी की उत्पत्ति होती है, चातुर्य से वह वृद्धि करती है, कौशल से जड़ जमा लेती है तथा धीरता से स्थायी होती है।

⁘⁘⁘

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्तिक्त कृतज्ञता च।।53।।
बुद्धि, उत्तम कुल, जितेंद्रियता, ज्ञान, संयमित वाणी, पराक्रम, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता-ये आठ गुण व्यक्ति की शोभा बढ़ाते हैं।

⁘⁘⁘

एतान् गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य।
राजा यदो सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान्गुणानेष गुणो विभाति।।54।।
महाराज धृतराष्ट्र! लेकिन इन आठों गुणों से भी बढ़कर एक और गुण है। जब राजा किसी व्यक्ति का सम्मान करना है तब यह राजसम्मान का एक गुण ही उन आठों गुणों से बढ़कर शोभा पाता है और राजा के सारे गुण चतुर्दिव्क्त फैल जाते हैं।

⁘⁘⁘

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि।
चत्वार्येषामन्ववेतानि सश्चित्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः।।55।।
राजन! ये आठ गुण इस संसार में ही मनुष्य को स्वर्गलोक का बोध करा देते हैं। इनमें से चार गुणों का तो सज्जन पुरुष स्वयं अनुसरण करते हैं और बाकी चार गुण स्वयं सज्जनों का अनुसरण करते हैं।

⁘⁘⁘

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्वेतानि सणि।
दमः सत्यमार्जवमानृशंसं चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः।।56।।
यज्ञ, दान, अध्ययन तथा तपश्चर्या-ये चार गुण सज्जनों के साथ रहते हैं और इंद्रियदमन, सत्य, सरलता तथा कोमलता-इन चार गुणों का सज्जन पुरुष अनुसरण करते हैं।

⁘⁘⁘

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृत।।57।।
यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और लोभ विमुखता-धर्म के ये आठ मार्ग बताए गए हैं। इन पर चलने वाला धर्मात्मा कहलाता है।

⁘⁘⁘

तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति।।58।।
राजन! इन आठ गुणों में से यज्ञ, मध्यम, दान और तप-इन चार गुणों को दुर्जन लोग अपना अहंकार दरशाने के लिए अपनाते हैं; लेकिन सत्य, क्षमा, दया और अलोभ को तो दुर्जन लोग चाह कर भी नहीं अपना सकते। ये उनके लिए दुर्लभ हैं।

⁘⁘⁘

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्तिर्मम्।
नासौधर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्।।59।।
जिस सभा में बड़े बूढ़े (ज्ञानी) न हों, वह सभा न होने के समान है; जो धर्मानुसारे न बोलें वे बड़े-बूढ़े (ज्ञानी) नहीं हैं; जिस बात में सत्य नहीं है, वह धर्म नहीं है और जो बात छल-कपट से भरी हो वह सत्य नहीं है।

⁘⁘⁘

सत्यं रूपं श्रुं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम्।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशमे स्वर्गयोनयः।।60।।
महाराज! सच्चाई, खूबसूरती, शात्रज्ञान, उत्तम कुल, शील, पराक्रम, धन, शौर्य, विनय और वाव्क्तपटुता-ये दस गुण स्वर्ग पाने के अर्थात् समस्त ऐश्वर्य पाने के साधन हैं।

⁘⁘⁘

पापं कुर्वन् पापकीर्ति पापमेवाश्नुते फलम्।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्ति पुण्यमत्यन्तमश्नुते।।61।।
दुर्जन लोग बुरे काम करते हैं; उनको उन्हें बुरा ही फल मिलता है। वहीं सज्जन लोग सद्कर्मों में लगे रहते हैं और पुण्य के भागी बनते हैं।

⁘⁘⁘

तस्मात् पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः।।62।।
नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्य प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः।।63।।
वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्ति पुण्यं स्थानं स्म गच्छति।
तस्मात् पुण्ये निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः।।64।।
इसलिए पुण्यकर्मा पुरुष को कभी बुरे कर्म नहीं करने चाहिए। जो सदा बुरे कर्मों में लिप्त रहता है, उसकी बुद्धि भष्ट हो जाती है फिर उसे अच्छे में भी बुरे ही कर्म दिखाई देते हैं। अच्छे कर्म करने से सुबुद्धि में वृद्धि होती तथा ऐसा व्यक्ति हमेशा अच्छे कार्य ही करता है। अच्छे कार्य पुण्य में बढ़ोतरी करते हैं और पुण्यात्मा उत्तम यश और उत्तम योनि प्राप्त करता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव उत्तम व शुभ कर्म करे।

⁘⁘⁘

असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः।
स कृच्छ्रं महदाप्नोति नचिरात् पापमाचरन्।।65।।
अच्छाई में बुराई देखनेवाला, उपहास उड़ाने वाला, कड़वा बोलने वाला, अत्याचारी, अन्यायी तथा कुटिल पुरुष पाप कर्मों में लिप्त रहता है और शीघ्र ही मुसीबतों से घिर जाता है।

⁘⁘⁘

अनसूयु कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन् सदा।
नकृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते।।66।।
जो व्यक्ति किसी की निंदा नहीं करता, केवल गुणों को देखता है, वह बुद्धिमान सदैव अच्छे कार्य करके पुण्य कमाता है और सब लोग उसका सम्मान करते हैं।

⁘⁘⁘

प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः।
प्राज्ञो ह्यावाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम्।।67।।
ज्ञानियों की संगत करने वाला सद्बुद्धि पाता है, वही सच्चा ज्ञानी है। ज्ञानी पुरुष ही धर्म और अर्थ के मार्ग पर सच्चाई से आगे बढ़कर उन्नति पाता है।

⁘⁘⁘

दिवसेनैव तत् कुर्य्याद् येन रात्रौ सुखं वसेत्।
अष्टमासेन तत् कुर्य्याद् येन वर्षा सुखं वसेत्।।68।।
पूर्वे वयसि तत्कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत्।
यावज्जीवेन तत्कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत्।।69।।

हर दिन ऐसा कार्य करें कि हर रात सुख से कटे। साल के आठ महीने वह कार्य करें कि वर्षा-काल के चार महीने सुख से कटे। बचपन में ऐसे कार्य करें कि वृद्धावस्था सुख से कटे और जीवन भर ऐसे कार्य करें कि मरने के बाद भी सुख मिले।

⁘⁘⁘

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम्।
शूं विजितसङ्ग्रामं गतपारं तपस्विनम्।।70।।

पच जाने पर भोजन की, यौवन बेदाग निकल जाने पर त्री की, युद्ध जीत लेनेवाले योद्धा की तथा तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेने पर तपस्वी की प्रशंसा होती है।

⁘⁘⁘

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृं तद् भवति ततोऽन्यदवदीर्यते।।71।।

राजन! अन्याय से कमाए धन से दोष नहीं छिपते, बल्कि कई और दोष उघड़ जाते हैं।

⁘⁘⁘

'अधर्मेणेधते तावद्दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्त त्वेकादशे वर्षे समूलञ्च विनश्यति'।।
गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः।।72।।

इंद्रियों को जीत लेने वाले सज्जनों को उनके गुरुजन मार्ग दिखाते हैं; दुर्जनों को दंड देकर राजा मार्ग दिखाता है और जो व्यक्ति चोरी-छिपे पाप करता है उसे यमराज दंड देकर मार्ग दिखाते हैं।

⁘⁘⁘

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम्।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः त्रीणां दुश्चरितस्य च।।73।।

ऋषियों, नदियों और संत-महात्माओं का कुल तथा त्रियों के चरित्र की छानबीन नहीं करनी चाहिए।

⁘⁘⁘

द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी।
क्षत्रियः शीलभाग् राजंश्चिरं पालयते महीम्।।74।।

महाराज! ज्ञानियों को पूजनेवाला, दानशील, कुटुंबपालक तथा शीलवान राजा लंबे समय तक राज्य-सुख भोगता है।

⁘⁘⁘

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषात्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्।।75।।

पराक्रमी, बुद्धिमान तथा सेवा को धर्म-कर्म मानने वाले पुरुष संसार में समस्त ऐश्वर्य माँगते हैं; यश तथा सम्मान के पात्र बनते हैं।

⁘⁘⁘

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।

तानि जङ्घाजघन्यानि भारतप्रत्यवरार्णि च।।76।।

हे भरतश्रेष्ठ! कर्म चार प्रकार के होते हैं। बुद्धि-बल से किए गए कर्म श्रेष्ठ कर्म होते हैं; बाहुबल के मध्यम, जंघा-बल के अधम तथा भार ढोने का कर्म महाअधम कहलाता है।

⁘⁘⁘

दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुश्शासने तथा।
कर्णे चैश्चर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि।।77।।

महाराज! आप दुर्योधन, शकुनि, दुश्शासन तथा कर्ण पर राज्य भार सौंपकर उन्नति की कल्पना कैसे कर सकते हैं? क्या ये आपको इस योग्य लगते हैं?

⁘⁘⁘

सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षम।
पितृवत् त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत्।।78।।

महाराज धृतराष्ट्र! पांडवों के उत्तम गुणों से आप भली-भाँति परिचित हैं। वे आपका आदर करते हैं और आपको पिता तुल्य समझते हैं; आप भी पिता जैसा भाव रखकर उनके साथ न्याय कीजिए।

⁘⁘⁘

।तीसरा अध्याय समाप्त।।

❑

4. विदुर उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम्।।1।।

वि दुर आगे कहते हैं-महाराज! किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इस विषय में महर्षि दत्तात्रेय और साध्य देवताओं के वृत्तांत का उदाहरण दिया जाता है। बड़े-बूढ़ों से उसे मैंने भी सुना है। (नोट-साध्य एक प्रकार के देवता हैं जो गण देवता के नाम से प्रसिद्ध हैं; जिनकी संख्या 12 कही गई है। कुछ ग्रंथों में इनकी संख्या 17 मिलती है। विष्णु पुराण के अनुसार ये दक्ष प्रजापति की पुत्री साध्या व धर्म के पुत्र हैं।)

चरन्तं हंसरूपेण महर्षिं संशितव्रतम्।
साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा।।2।।

पुराने समय की बात है, वन में महर्षि दत्तात्रेय हंस (संन्यासी) के रूप में विचरण कर रहे थे। तभी साध्य देवताओं की दृष्टि उन पर पड़ी। वे उनके निकट गए और बात करने लगे।

साध्या ऊचु

साध्या देवा वयमेते महर्षे दृष्ट्वा भवन्तं न शक्नुमोऽनुमातुम्।
श्रुतेन धीरोबुद्धिमांस्त्वं मतो नः कोव्यां वाचंवक्तुमर्हस्युदाराम्।।3।।

साध्य बोले-हे महर्षि! हम साध्य देवता हैं। आपके विषय में हम ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा पा रहे हैं, लेकिन आप शात्रज्ञ, ज्ञानी और महात्मा जान पड़ते हैं। कृपया अपने जानोपदेश से हमारा कल्याण करें।

एतत् कार्यममराः संश्रुं मे धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः।
ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं प्रियाप्रिये चात्मसमं नयेत।।4।।

हंस (दत्तात्रेय) ने कहा-हे देवगण! मैंने सुना है कि धीरज, मन पर नियंत्रण, तथा धर्मानुसार सत्य मार्ग पर चलना ही मनुष्य का कर्तव्य है। मनुष्य को चाहिए कि वह मन के सभी विकारों को त्यागकर मित्र एवं शत्रु सभी लोगों को अपने समान समझे।

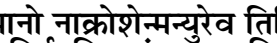

आक्रुश्मानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृं चास्य विन्दति।।5।।

अपनी बुराई सुनकर भी जो स्वयं बुराई न करे, उसे क्षमा कर दें। इस प्रकार उसे उसका पुण्य प्राप्त होता है और बुराई करनेवाला अपने कर्मों से स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो रूक्षां वाचं रुषतीं वर्जयीत।।6।।

किसी की बुराई व अपमान न करें, मित्रों से धोखा तथा बुरे लोगों की संगति न करें, शीलहीन व अहंकारी न हों, कठोर तथा क्रोध दिलानेवाली बात न करें।

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून्, रूक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम्।
तस्माद् वाचुमुषतीमुग्ररूपां धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत।।7।।

कठोर बात सीधी मर्मस्थान, हड्डियों तथा दिल पर जाकर चोट करती है और प्राणों को टीसती रहती है, इसलिए धर्मप्रिय व्यक्ति को ऐसी बातों को हमेशा के लिए छोड़ देना चाहिए।

⁘⁘⁘

अरुन्तुं परुषं रूक्षवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वै वहन्तम्।।8।।
जो कठोर बोलता है, जिसका स्वभाव कटुतापूर्ण है, जो बोलों से मनुष्य पर मर्माघात करता है, वह महानीच व्यक्ति है। वह मुँह में साक्षात् मृत्यु को ढोता और नाश को प्राप्त होता है।

⁘⁘⁘

परश्चेदेनमभिविध्येत बाणैर्भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कदीप्तै।
स विध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो विद्यात् कविः सुकृं मे दधाति।।9।।
सज्जन पुरुष को यदि कोई तीखे शब्द-बाण मारे, इनसे वह बुरी तरह आहत हो जाए, लेकिन पीड़ा सहते हुए भी वह धीरज रखे, क्योंकि इस तरह निश्चित ही उसके पुण्यों में वृद्धि होती है।

⁘⁘⁘

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति।।10।।
कपड़े को जिस रंग में रँगा जाए, उस पर वैसा ही रंग चढ़ जाता है, इसी प्रकार सज्जन के साथ रहने पर सज्जनता, चोर के साथ रहने पर चोरी तथा तपस्वी के साथ रहने पर तपश्चर्या का रंग चढ़ जाता है।

⁘⁘⁘

अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद् यो नाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत्।
हन्तुं च यो नेच्छति पातकं वै तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय।।11।।
जो न किसी को बुरा कहता है, न कहलवाता है; चोट खाकर भी न तो चोट करता है, न करवाता है; दोषियों को भी क्षमा कर देता है-देवता भी उसके स्वागत में पलकें बिछाए रहते हैं।

⁘⁘⁘

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहु सत्यं वदेद् व्याहृतं यद् द्वितीयम्।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम्।।12।।
शास्त्रों में मौन को बोलने से अच्छा कहा गया है; इसे वाणी की पहली विशेषता कहा जा सकता है, लेकिन यदि सत्य बोला जाए तो वह वाणी की दूसरी विशेषता है। सत्य भी यदि प्रिय (जो सुनने वालों को अच्छा लगे), बोला जाए तो वह वाणी की तीसरी विशेषता है और प्रिय सत्य धर्मसम्मत बोला जाए तो वह वाणी की चौथी विशेषता है।

⁘⁘⁘

यादृशै सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः।।13।।
व्यक्ति जैसे लोगों के साथ उठता-बैठता है, जैसे लोगों की संगति करता है, उसी के अनुरूप स्वयं को ढाल लेता है।

⁘⁘⁘

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुखमण्वपि।।14।।
इंद्रियों पर नियंत्रण करके मनुष्य जिन-जिन बुराइयों को छोड़ना चाहता है, वे छूटती जाती हैं और सारी बुराइयों से मुक्ति के बाद उसके कष्ट भी समाप्त ही जाते हैं।

⁘⁘⁘

न जायते चानुजिगांषतेऽन्यान् न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च।
निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो न शोचते हृष्यति नैव चायम्।।15।।
जो व्यक्ति न तो किसी को जीतता है, न कोई उसे जीत पाता है; न किसी से दुश्मनी करता है, न किसी को चोट पहुँचाता है; बुराई और बड़ाई में जो तटस्थ रहता है; वह सुख-दुख के भाव से परे हो जाता है।

⁘⁘⁘

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः।।16।।
जो पुरुष सबका भला चाहता है, किसी को कष्ट में नहीं देखना चाहता। जो सदा सच बोलता है, जो मन का कोमल है और जितेंद्रिय भी, उसे उत्तम पुरुष कहा जाता है।

⁘⁘⁘

नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च।
रन्धं परस्य जानाति यः सः मध्यमपूरुषः।।17।।
जो झूठा भरोसा नहीं देता, वचन देकर पूरा करता है तथा जो दूसरों की बुराइयाँ जानता है, उसे मध्यम पुरुष कहा जाता है।

⁘⁘⁘

दुशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो नावर्तते मन्युवशात् कृतघ्नः।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः।।18।।
राजन! दुशासन को गंधर्वों ने अत्र-शत्रों से बुरी तरह मारा-पीटा, तब पांडवों ने उसकी जान बचाई तो भी वह कृतघ्न उन्हें बुरा-भला करने से बाज नहीं आता। वह दुष्ट किसी का हितैषी नहीं हो सकता। ऐसी मानसिक स्थिति वाले लोग अधम पुरुष कहलाते हैं।

⁘⁘⁘

न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशमशङ्कितः।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः।।19।।
जिस व्यक्ति को अपने आप पर भरोसा नहीं होता, वह दूसरों का भी भरोसा नहीं करता, इसलिए कोई भी उसका मित्र नहीं होता। ऐसा व्यक्ति अधम पुरुष कहलाता है।

⁘⁘⁘

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान्।
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद् भूतिमात्मनः।।20।।
अपनी उन्नति चाहनेवाले को सदैव उत्तम पुरुषों की संगति करनी चाहिए। विपरीत समय में चाहे मध्यम पुरुषों का संग कर लें, लेकिन अधम पुरुषों से सदा बचकर रहें।

⁘⁘⁘

प्राप्नोति वै वित्तमसद्बलेन नित्योत्थानात् प्रज्ञया पौरुषेण।
न त्वेव सम्यग्लभते प्रशंसां न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम्।।21।।
बेईमानी से, बराबर कोशिश से, चतुराई से कोई व्यक्ति धन तो प्राप्त कर सकता है, लेकिन सदाचार और उत्तम पुरुष को प्राप्त होने वाले आदर-सम्मान को प्राप्त नहीं कर सकता।

⁘⁘⁘

धृतराष्ट्र उवाच

महाकुलेभ्यः स्पृहयन्ति देवा धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च।
पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं भवन्ति वै कानि महाकुलानि।।22।।

धृतराष्ट्र ने पूछा-हे मनीषि विदुर! देवगण भी उत्तम कुल में जनमे मनुष्यों से मिलने को लालायित रहते हैं। ये उत्तम कुल कौन-कौन से होते हैं?

तमो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः पुण्या विवाहाः सततान्नदानम्।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि।।23।।

विदुर बोले-महाराज! जिसमें तप, इंद्रिय-निग्रह, धर्म-गंथों का स्वाध्याय, यज्ञ, धर्मनिष्ठ विवाह, अन्नदान की आदत और सदाचार-ये सात सदैव बने रहते हैं; उसे उत्तम कुल कहते हैं।

येषां हि वृत्तं व्यथते न योनिश्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्।
ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि।।24।।

जो सदैव माँ-पिता को प्रसन्न रखते हैं; स्वेच्छया धर्माचरण करते हैं, सदाचार व सत्य को कभी नहीं त्यागते तथा सतत् अपने कुल की कीर्ति बढ़ाने में लगे रहते हैं, वे उत्तम कुल हैं।

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च।।25।।

यज्ञ-हवन न होने से, धर्म-ग्रंथों के अपमान से तथा पाप के मार्ग पर चलने से उत्तम कुल भी अधम कहलाने लगते हैं।

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मज्ञपहीएरेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च।।26।।

धर्म-कार्यों के लिए रखे गए धन के उपभोग से, ब्राह्मणों के साथ दुर्व्यवहार व उनके साथ बेईमानी करने पर उत्तम कुल भी अधम कुल हो जाते हैं।

ब्राह्मणानां परिभवात् परिवादाच्च भारत।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्योसापहरणेन च।।27।।

हे धृतराष्ट्र! ब्राह्मणों के अनादर व बुराई तथा अमानत में खयानत से उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं।

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्या न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः।।28।।

गायों, धन-संपत्ति और लोगों से भरे-पूरे घर भी सदाचार न होने से उत्तम कुल की गिनती में नहीं आते। इनकी गिनती अधम कुलों में होती है।

वृत्ततस्त्वाहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद् यशः।।29।।

जिनके पास चाहे धन की कमी हो, लेकिन सदाचार की कोई कमी न हो, ऐसे कुल भी उत्तम कुलों में गिने जाते हैं तथा ये कुल मान-सम्मान और कीर्ति प्राप्त करते हैं।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।।30।।

चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। धन तो आता-जाता रहता है। धन के नष्ट होने पर भी चरित्र सुरक्षित रहता है, लेकिन चरित्र नष्ट होने पर सबकुछ नष्ट हो जाता है।

⁘⁘⁘

गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः।।31।।
जिस कुल में सदाचार नहीं है, वहाँ गायों, घोड़ों, भेड़ तथा अन्य लाख पशु-धन मौजूद हों, उस कुल की उन्नति नहीं हो सकती।

⁘⁘⁘

मा न कुले वैरकृत् कश्चिदस्तु राजाऽमात्यो मा परस्वापहारी।
मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः।।32।।
हमारे कुल में ऐसे लोग न हों जो दुश्मनी करने में विश्वास रखते हों। राजा और मंत्री लुटेरे न हों। कोई कुटिल, झूठा या मित्रद्रोही न हो। ऐसे लोग भी न हों जो देवताओं, पित्रों तथा अतिथियों से पूर्व भोजन ग्रहण करते हों।

⁘⁘⁘

यश्च नो ब्राह्मणान् हन्याद् यश्च नो ब्राह्मणान् द्विषेत्।
न नः स समितिं गच्छेद् यश्च नो निर्वपेत् कृषिम्।।33।।
हमारे कुल में कोई ब्रह्म-हत्यारा, ब्राह्मण-द्वेषी तथा नास्तिक न हो। ऐसे व्यक्ति को सभा में जाने से रोका जाए।

⁘⁘⁘

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी न सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।34।।
सज्जनों के घर में अन्न, जल, बैठने के स्थान और मीठी बोली की कमी कभी नहीं होती।

⁘⁘⁘

श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम्।
प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम्।।35।।
महाराज! आस्तिक तथा धर्म मार्ग पर चलने वालों के यहाँ ये चारों (उपर्युक्त) चीजें बड़ी श्रद्धा और आस्था के साथ परोसी जाती हैं। यही उत्तम कुल की निशानी है।

⁘⁘⁘

सूक्ष्मोऽपि भारंनृपते स्यन्दनो वै शक्तक्ताह्यवोढुं न तथान्ये महीजाः।
एवंयुक्तक्ता भारसहा भवन्ति महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः।।36।।
राजन्! जैसे रथ छोटा होने पर भी भार को संभाल सकता है, लेकिन काठ के बड़े-बड़े लट्ठे वैसा नहीं कर सकते। इसी प्रकार उत्तम कुल में जनमें मनुष्य भी भार वहन कर सकते हैं; दूसरे लोग वैसा नहीं कर सकते। अर्थात् उत्तम कुल में जनमें लोग दूसरों के लिए कष्ट सह सकते हैं; लेकिन अन्य लोग यह नहीं कर सकते।

⁘⁘⁘

न तन्मित्रं यस्य कोपाद् बिभेति यद् वा मित्रं शङ्कितेनोपचर्यम्।
यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वेसीत तद् वै मित्रं सङ्गतानीतराणि।।37।।
जिसके क्रोध से भय लगता हो तथा जिस पर सच्ची आस्था न हो, वह मित्र नहीं हो सकता। मित्र वह हो सकता है जिस पर पिता की तरह आस्था हो, अन्य इकट्ठे हुए लोग तो संगी-साथी मात्र हैं।

⁘⁘⁘

यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत् परामयणम्।।38।।
जो मनुष्य कोई रिश्ता न होने पर भी मैत्रीपूर्ण व्यवहार करे, उसी को अपना सच्चा मित्र, बंधु, आधार और आश्रय मानना चाहिए।

⁘⁘⁘

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुसेवतः।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रेसङ्ग्रहः।।39।।
जिस व्यक्ति का चंचल-अस्थिर स्वभाव हो, जो बुजुर्गों की बातें नहीं सुनता, उससे ज्यादा समय तक स्थायी मित्रता संभव नहीं है। यह क्षणिक मित्रता कभी भी बड़ी शत्रुता में बदल सकती है।

⁘⁘⁘

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम्।
अर्था समभिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा।।40।।
अस्थिर स्वभाव वाले, अज्ञानी, इंद्रियों के गुलाम लोग सूखे तालाब की भाँति होते हैं; जिसके चारों और धन-संपत्ति रूपी हंस मँडराते तो रहते हैं, लेकिन नीचे नहीं उतरते।

⁘⁘⁘

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः।
शीलमेतदसाधूनामभं पारिप्लवं यथा।।41।।
दुष्ट लोग अकारण खुश होते हैं और अकारण रुष्ट। ये लोग जलहीन बादलों के समान होते हैं; जो अकारण आसमान में मँडराता रहता है लेकिन बरसकर किसी का उपकार नहीं करता। इसी प्रकार दुष्टों की प्रसन्नता और क्रोध मूल्यहीन होते हैं।

⁘⁘⁘

सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते।।42।।
जो लोग मित्रों से आदर और सहयोग पाकर उन्नति करते हैं फिर उन्हीं मित्रों से विश्वासघात करते हैं; मरने पर मांसभक्षी पशु-पक्षी भी उनके शवों को नहीं खाते। वे मरकर भी तिरस्कार पाते हैं।

⁘⁘⁘

अर्चयेदेव मित्राणि सति वाऽसति वा धने।
नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम्।।43।।
मित्रों का हर स्थिति में आदर करना चाहिए-चाहे उनके पास धन हो अथवा न हो तथा उससे कोई स्वार्थ न होने पर भी वक्त-जरूरत उनकी सहायता करनी चाहिए।

⁘⁘⁘

सन्तापाद् भ्श्यते रूपं सन्तापाद् भ्श्यते बलम्।
सन्तापाद् भश्येते ज्ञानं सन्तापाद् व्योधिमृच्छति।।44।।
शोक करने से रूप-सौंदर्य नष्ट होता है, शोक करने से पौरुष नष्ट होता है, शोक करने से ज्ञान नष्ट होता है और शोक करने से मनुष्य का शरीर दुखों का घर हो जाता है। अर्थात् शोक त्याज्य है।

⁘⁘⁘

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः।।45।।
हे राजन! शोक करने से इच्छित वस्तु नहीं मिलती, उससे तो केवल शरीर कष्ट पाता है और शत्रु खुश होते हैं। इसलिए आप शोक न करें।

⁘⁘⁘

पुनर्नरो म्रियते जायते च पुनर्नरो हीयते वर्धते च।
पुनर्नरो याचति याच्यते च पुनर्नरः शोचति शोच्यते च।।46।।

मनुष्य के जीवन-मृत्यु का चक्र चलता रहता है-न जाने वह कितनी बार मरता है और जन्म लेता है, बारंबार लाभ-हानि रहता है, बारंबार माँगता और देता है, दूसरों के लिए शोक करता है तथा लोग उसके लिए शोक करते हैं।

⁘⁘

सुखं च दुखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति तस्माद् धीरो न हृष्येन्न शोचेत्।।47।।

सुख-दुख, लाभ-हानि, जीवन-मृत्यु, उत्पत्ति-विनाश-ये सब स्वाभाविक कर्म समय-समय पर सबको प्राप्त होते रहते हैं। ज्ञानी पुरुष को इनके बारे में सोचकर शोक नहीं करना चाहिए। ये सब शाश्वत कर्म हैं।

⁘⁘

चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि तेषां यद् यद् वर्धते यत्र यत्र।
ततस्ततः स्त्रवते बुद्धिरस्य छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्मः।।48।।

मनुष्य की छह इंद्रियाँ बहुत बेलगाम हैं, ये जितनी अधिक विषय-भोगों में लिप्त होती जाती हैं; मनुष्य उतना ही विवेकहीन होता जाता है, जैसे छेद हुए घड़े से सारा पानी निकल जाता है।

⁘⁘

धृतराष्ट्र उवाच

तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं कष्यिति।।49।।
नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः।
यत् तत् पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते।।50।।

धृतराष्ट्र ने कहा-जैसे काठ के भीतर आग छिपी होती है, वैसे ही युधिष्ठिर के भीतर धर्म-निष्ठता छिपी है। मैंने धर्मप्रिय युधिष्ठिर के साथ छल किया। मुझे भय है, युद्ध में वह मेरे पुत्रों को मार डालेगा। मेरा मन इस भय से बहुत खिन्न है। इसे शांत करने का उपाय बताओ।

⁘⁘

विदुर उवाच

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियविग्रहात्।
नान्यत्र लोभसन्त्यागाच्छातिं पश्यामि तेऽनघ।।51।।

विदुर ने कहा-हे पुण्यात्मा धृतराष्ट्र! ज्ञान, तप, इंद्रियों पर नियंत्रण तथा लोभ-त्याग के अलावा आपके लिए शांति का कोई और उपाय नहीं है।

⁘⁘

बुद्धयो भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत्।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति।।52।।

ज्ञान द्वारा मनुष्य का डर दूर होता है, तप द्वारा उसे ऊँचा पद मिलता है, गुरु की सेवा द्वारा विद्या प्राप्त होती है तथा योग द्वारा शांति प्राप्त होती है।

⁘⁘

अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः।
रागद्वेषविनिर्मुक्तक्ता विचनन्तीह मोक्षिणः।।53।।

महाराज! जिसे मोक्ष की इच्छा हो वह दान-पुण्य, यज्ञ-अनुष्ठान, स्नान-ध्यान आदि साधनों का सहारा नहीं लेता, वह तो बस निस्स्वार्थ भाव से जीवनयापन करता है।

⁘⁘

स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते।।54।।
अच्छी विद्या, धर्म-सम्मत् युद्ध, अच्छे कर्म तथा सात्विक तप से अच्छे फल के रूप में सुखों की प्राप्ति होती है।

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना न वै भिन्ना जातु निद्रं लभन्ते।
न त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति न मागधे स्तूयमाना त सूते।।55।।
महाराज! आपसी भेद-भाव रखने वालों को सुंदर बिस्तरों पर भी नींद नहीं आती, सुंदर त्रियों से भी सुख-भोग नहीं मिलता तथा वे सेवकों की स्तुति से भी प्रसन्न नहीं होते हैं।

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः।
न वै सुखंभिन्ना गौरवंप्राप्नुवन्ति न वै भिन्नाप्रशंमंरोचयन्ति।।56।।
जिनमें मतभेद होता है, वे लोग कभी न्याय के मार्ग पर नहीं चलते। सुख उनसे कोसों दूर होता है, कीर्ति उनकी दुश्मन होती है, तथा शांति की बात उन्हें चुभती है।

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुत्तंक्त योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम्।
भिन्नानां वै मनुजेन्द्रपरायणं न विद्यते किञ्चिदन्यत् विनाशात्।।57।।
राजन! ईर्ष्यालु लोगों को अपनी भलाई की बात भी कड़वी लगती है। इसे प्रवृत्ति से उनकी उन्नति और विकास के मार्ग बंद हो जाते हैं। ऐसे लोगों का विनाश अवश्यंभावी है।

सम्पन्नं गोषु सम्भाव्यं सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः।
सम्भाव्यं चापलं त्रीषु सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम्।।58।।
जैसे गायों में दूध, ब्राह्मण में तप तथा त्रियों में चंचलता का होना संभव है, उसी प्रकार नाते-रिश्तेदारों से भय होना भी संभव है।

तन्तवो प्यायिता नित्यं तनवो बहुलाः समाः।
बहून् बहुत्वादायासान् सहन्तीत्युपमा सताम्।।59।।
पांडवों को भी आप ही ने पुत्रों की भाँति प्यार से पोल-पोसकर बड़ा किया है। आज वे इतने कष्ट झेल रहे हैं फिर भी चुप हैं। उनसे बड़ा सज्जन कौन होगा?

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ।।60।।
हे धृतराष्ट्र! जैसे एक अकेली लकड़ी जलने पर धुआँ देती है, लेकिन कई लकड़ियाँ इकट्ठी होने पर तेजी से जलती हैं, इसी प्रकार कुल से अलग हुए संबंधी भी दुख उठाते हैं उनमें एकता होगी, तभी वे सुखी रहेंगे।

ब्राह्मणेषु च ये शूराः त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च।
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र! पतन्ति ते।।61।।
राजन्! वे लोग पेड़ से पके फल की तरह टूटकर अलग हो जाते, अर्थात् नष्ट हो जाते हैं जो ब्राह्मणों, त्रियों, रिश्तेदारों और गायों को पीड़ित करते हैं।

महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात्।।62।।

अथ ये सांहता वृक्षाः सङ्घशः सुप्रतिष्ठिताः।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात्।।63।।
अकेला वृक्ष चाहे कितना ही बड़ा और मजबूत हो, आँधी उसे जड़ से उखाड़कर धराशायी कर सकती है। वहीं जो वृक्ष समूह में होते हैं; वे मिलजुलकर बड़ी-बड़ी आँधियों को झेल जाते हैं।

⁘⁘⁘

एवं मनुष्यमप्येक गुणैरपि समन्वितम्।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम्।।64।।
इसी प्रकार अकेले-गुणी व बलवान राजा को भी शत्रु पराजित कर देते हैं; जैसे अकेले वृक्ष को आँधी उड़ा ले जाती है।

⁘⁘⁘

अन्योऽन्यसमुपष्टम्भादन्योऽन्यापाश्रयेण च।
ज्ञातयः सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत।।65।।
लेकिन मिलजुलकर, एक-दूसरे की सहायता से सगे-संबंधी उसी प्रकार बढ़ते हैं, जैसे सरोवर में कमल।

⁘⁘⁘

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः त्रियः।
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्यु शरणागताः।।66।।
राजन्! ब्राह्मण, गाय, संबंधी, बच्चे, त्री, भोजन देनेवाला तथा शरण में आया-इन्हें कभी नहीं मारना चाहिए। ये सब शात्रों के अनुसार अवध्य की श्रेणी में आते हैं।

⁘⁘⁘

न मनुष्ये गुणः कश्चिद् राजन् सधनतामृते।
अनातुरत्वाद् भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः।।67।।
महाराज! धन और स्वास्थ्य ही मनुष्य के दो सबसे बड़े गुण हैं। विद्वानों ने रोगी को मुरदे के समान कहा है। मेरी कामना है कि आप सदैव इन दो गुणों से भरे-पूरे रहें।

⁘⁘⁘

अव्याधिजं कटुं शीर्षरोगि पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य।।68।।
हे राजन्! क्रोध एक तीक्ष्ण विष है जो कड़वा, सिर-दर्द पैदा करने वाला, पापी, क्रूर और प्रकृति में गरम है। दुष्ट प्रकृति के लोग इसे नहीं पी सकते, सज्जन पी जाते हैं। मेरी विनती है, इस क्रोध को आप पी जाएँ और शांत हो जाएँ।

⁘⁘⁘

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम्।
दुखोपेता रोगिणो नित्यमेव न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम्।।69।।
रोगी मनुष्य को न तो फल अच्छे लगते हैं न भोग विलास। हर तरह के सुख से दूर, हर वस्तु में वे केवल दुख-ही-दुख पाते हैं।

⁘⁘⁘

पुरा ह्ययुक्तंक्त नाकरोस्त्वंवचो मे द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन्।
दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां कितवत्वं पण्डिताः वर्जयन्ति।।70।।
महाराज! द्रौपदी को जुए में विजित देखकर मैंने पहले ही आपसे कहा था कि इस अनर्थ को रोकिए। ज्ञानीजन जुए जैसी बुरी लत को प्रोत्साहन नहीं देते। लेकिन आपने दुर्योधन को नहीं रोका।

⁘⁘⁘

न तद् बलं यन्मृदुना विरुध्यते सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सोवेतव्यः।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान्।।71।।
अन्याय का तक्षण विरोध करना चाहिए तथा बल का दमन दृढ़तापूर्वक करना चाहिए। अन्याय से अर्जित धन ज्यादा समय तक नहीं ठहरता, जबकि न्याय द्वारा अर्जित धन कई पीढ़ियों तक चलता है।

⁘⁘⁘

धार्तराष्ट्राः पाण्डवान् पालयन्तु पाण्डो सुतास्तव पुत्रांश्च पान्तु।
एकारिमित्राः कुरवो ह्येककार्या जीवन्तु राजन् सुखिनः समृद्धाः।।72।।
महाराज! मेरी तो यही अभिलाषा है कि कौरव और पांडव मिलजुलकर रहें, एक-दूसरे की रक्षा करें, उनके मित्र भी समान हों और वैरी भी। उनका राज्य समृद्धि करे। वे सुखपूर्वक राज्य करें और चिंरजीवी रहें।

⁘⁘⁘

मेढ़ीभूतः कौरवाणां त्वमद्य त्वमद्य त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ।
पार्थान् बालान् वनवासप्रतप्तान् गोपायस्व सं यशस्तात रक्षन्।।73।।
धृतराष्ट्र! आज आप ही कौरव कुले के रक्षक और सेर्वेसर्वा हैं। आपका दायित्व है कि आप कौरव और पांडव दोनों की रक्षा करें। वनवास में पांडव बहुत कष्ट झेल चुके हैं। अब आप पिता के रूप में उनकी रक्षा और पालन कीजिए।

⁘⁘⁘

सन्धत्स्व त्वं कौरव पाण्डुपुत्रैर्मा तेऽन्तरं रिपवः पार्थयन्तु।
सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे दुर्योधन स्थापय त्वं नरेन्द्र।।74।।
राजन्। सबकी भलाई इसी में है कि आप पांडवों के साथ संधि कर लें। शत्रु इस फूट का लाभ न उठा पाएँ। महाराज! पांडव सत्य के रास्ते चल रहे हैं; आप दुर्योधन को सँभालिए।

⁘⁘⁘

।।चौथा अध्याय समाप्त।।

❑

5. विदुर उवाच

सप्तदेशेमान् राजेन्द्र मनु स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।
वैचित्रवीर्य पुरुषान् आकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः।।1।।
दानवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत्।
अथ मरीचिनः पादान् अग्राह्यान् गृह्णतस्तथो।।2।।
यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्येद् यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम्।
त्रियश्च यो रक्षतिभद्रमश्नुते यश्चोयाच्यं याच्यते कत्थते च।।3।।
यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र।।4।।
वध्वोवहासं श्चशुरो मन्यते यो वध्वाऽवसन्नभयो मानकामः।
परक्षेत्रे निर्वपति यश्च बीजं त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम्।।5।।
यश्चापिलब्ध्वा न स्मरामीतिवादी दत्त्वा च यः कत्थतियाच्येमानः।
यश्चासतः सत्त्वमुपानयीत एतान् नयन्ति निरयं पाशहस्ताः।।6।।

वि दुर ने आगे कहा-हे धृतराष्ट्र! स्वायंभुव मनु ने कहा है कि सत्रह प्रकार के लोगों को नरक में कठोर दंड मिलता है। ये लोग हैं-(1) आकाश को घूँसों से मारने वाले, (2) इंद्रधनुष को तोड़ने का प्रयास करने वाले, (3) सूर्य की किरणों को पकड़ने का प्रयास करने वाले, (4) अयोग्य शासक, (5) मर्यादाहीन व्यक्ति, (6) शत्रु-सेवक, (7) निर्बलों की रक्षा करके आजीविका चलाने वाले, (8) अयोग्य व्यक्ति से कुछ माँगने वाले और आत्म प्रशंसक, (9) कुलीन होकर भी नीच कार्य करने वाले, (10) अपने से बलवान से वैर करने वाले, (11) अश्रद्धालु के साथ अमर्यादित व्यवहार करने वाले (12) दुर्लभ वस्तु के इच्छुक, (13) पुत्रवधू के साथ अमर्यादित व्यवहार करने वाले, (14) परत्री से संबंध रखने वाले, (15) त्री-निंदक, (16) अमानत हड़पनेवाले तथा (17) अपने दान का बखान करके झूठ को सत्य सिद्ध करनेवाले।

⁘⁘⁘

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्म।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः।।7।।
राजन! जैसे के साथ तैसा ही व्यवहार करना चाहिए। कहा भी गया है, जैसे को तैसा। यही लौकिक नीति है। बुरे के साथ बुरा ही व्यवहार करना चाहिए और अच्छों के साथ अच्छा।

⁘⁘⁘

जरा रूपं हरति धैर्यमाशा मृत्यु प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
कामो हियं वृत्तमनार्यसेवा क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः।।8।।
बुढ़ापा सुंदरता का नाश कर देता है, उम्मीद धीरज का, ईर्ष्या धर्म-निष्ठा का, काम लाज-शर्म का, दुर्जनों का साथ सदाचार का, क्रोध धन का तथा अहंकार सभी का नाश कर देता है।

⁘⁘⁘

धृतराष्ट्र उवाच

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्यथ च तत् सर्वमायु केनेह हेतुना।।9।।
धृतराष्ट्र ने कहा-विदुर! जब सभी वेदों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष की कही गई है तो वह इतना जीता क्यों नहीं?

⁘⁘⁘

विदुर उवाच

अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्।।10।।

विदुर बताने लगे-महाराज! घोर अहंकार, वाचालता, भोग प्रवृत्ति, क्रोध, स्वउदरपोषण और मित्र से घात-ये छह सतत् अवगुण मनुष्य की आयु को क्षीण करते हैं।

एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूषि देहिनाम्।
एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते।।11।।

मृत्यु मनुष्य की आयु को कम नहीं करती, ये छेह अवगुण तीखी तलवारें हैं जो आयु क्षीण करते हैं। हे महाराज! आप कल्याण चाहनेवाले हैं। आप इन अवगुणों से बचेंगे।

विश्चस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः।
वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पोनपश्चैव भारत।।12।।
आदेशकृद् वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः।
शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः।
एतै समेत्य कर्त्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः।।13।।

जो किसी का विश्वास तोड़कर परत्री से संबंध बनाता है, गुरु की पत्नी से संबंध बनाता है, ब्राह्मण होकर अधम त्री से संबंध बनाता है, मदिरापान करता है, बुजुगों को आदेश देता है, दूसरों की आजीविका छीनता है, ज्ञानीजन का अनादर करता है, शरण में आनेवालों को मारता-पीटता है-इन्हें वेदों में ब्रह्म-हत्यारा कहा गया है। इनका साथ हो जाने पर प्रायश्चित्त जरूरी है।

गृहीतेवाक्यो नयविद् वदान्यः शेषान्नभोक्तक्ता ह्यविहिंसकश्च।
नानार्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः सत्यो मृदु स्वर्गमुपैति विद्वान्।।14।।

आज्ञाकारी, नीति-निपुण, दानी, धर्मपूर्वक कमाकर खाने वाला, अहिंसक, सुकर्म करने वाला, उपकार मानने वाला, सत्यवादी तथा मीठा बोलने वाला पुरुष स्वर्ग में उत्तम स्थान पाता है।

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अतियस्य तु पथ्यस्य वत्तक्ता श्रोता च दुर्लभः।।15।।

राजन! दुनिया में मीठा बोलने वालों की तो कोई कमी नहीं है, लेकिन जो मीठा भी बोले और हितकारी भी, ऐसे बोलनेवाले और सुननेवाले दोनों ही कठिनाई से मिलते हैं।

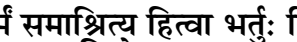

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान्।।16।।

जो इस बात की चिंता नहीं करता कि राजा को उसकी बात अच्छी लगेगी या बुरी और अप्रिय होने पर भी केवल सच्ची और हितकारी बात करता है, वही राजा का सच्चा सहायक व हितैषी है।

त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।17।।

समुदाय के कल्याण के लिए एक व्यक्ति का त्याग कर देना चाहिए, गाँव के कल्याण के लिए कुल का, राज्य के कल्याण के लिए गाँव का तथा अपने कल्याण के लिए सारी धरती को भी छोड़ना पड़े तो छोड़ देना चाहिए।

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।।18।।

मुसीबत के लिए धन जमा करना चाहिए। त्री पर कोई मुसीबत आ पड़े तो धन-बल से उसकी रक्षा करनी चाहिए। जब स्वयं की रक्षा करनी हो, या स्वयं को मुसीबत से छुड़ाना हो तो इसके लिए त्री और धन दोनों की सहायता लेने पड़े तो लेनी चाहिए।

.:..:..:

द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम्।
तस्माद् द्यूं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्।।19।।

जुए को प्राचीन समय से ही एक बुराई के रूप में देखा गया है, इसलिए समय बिताने के लिए भी जुआ नहीं खेलना चाहिए।

.:..:..:

उत्तंक्त मया द्यूतकालेऽपि राजन् नेदं युत्तंक्त वचनं प्रातिपेय।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य न रोचते तव वैचित्रवीर्य।।20।।

महाराज! धृतराष्ट्र! कौरवों और पांडवों के बीच जुए का खेल शुरू होते समय ही मैंने आपको सावधान किया था कि इस अनर्थ को रोकिए। लेकिन आपने मेरी बात अनसुनी कर दी-वैसे ही जैसे रोगी को कड़वी दवा अच्छी नहीं लगती।

.:..:..:

काकैरिमांश्चित्रबर्हान् मयूरान् पराजयेथाः पाण्डवान् धार्तराष्ट्रै।
हित्वासिंहान् क्रोष्टुकान्गूहमानः प्राप्तेकाले शेचिता त्वंनरेन्द्र।।21।।

आप उम्मीद करते हैं कि कौवों के जैसे गुणधर्म वाले कौरव मोर जैसे गुणधर्म वाले पांडवों को पराजित कर देंगे। यह आपकी भयंकर भूल होगी। आप सिंहरूपी पांडवों की बजाय गीदड़ों का पक्ष ले रहे हैं। इसके लिए बाद में आपको पछताना पड़ेगा।

.:..:..:

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं भृत्यस्य भत्तक्तस्य हिते रतस्य।
तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति।।22।।

भाई धृतराष्ट्र! जो पुरुष अपने सच्चे सेवक पर कभी क्रोध नहीं करता, मुसीबत पड़ने पर ऐसा सेवक सच्चा हमदर्द सिद्ध होता है। कभी अपने मालिक को छोड़कर नहीं जाता।

.:..:..:

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन राज्यं धनं सञ्जिघक्षेदपूर्वम्।
त्यजन्तिह्येन वञ्चितावै विरुद्धाः स्निग्धाह्यमात्याः परिहीनभोगाः।।23।।

न तो कभी अपने किसी सेवक की आजीविका छीननी चाहिए, न किसी का धन और राज्य। जिनकी आजीविका छिन जाती है, वे आपके हितैषी होने पर भी आपका साथ छोड़कर चले जाते हैं।

.:..:..:

कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वाण्यायव्यये चानुरूपां च वृत्तिम्।
सङ्गृह्यादनुरूपान् सहायान् सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि।।24।।

महाराज! किसी भी काम को पूरा करने में सहायकों की जरूरत पड़ती है। सहायकों की भरती से पहले उनके कार्य तय करें, फिर अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनका वेतन तय करें। इस प्रकार सहायक रखने पर वे आपका कठिन-से-कठिन कार्य पूरा करने में सहायक होते हैं।

.:..:..:

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री।
वत्तक्ता हितानामनुरत्तक्त आर्य शत्तिक्तज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः।।25।।

जो सेवक स्वामी की बात के मर्म को समझकर स्फूर्ति से सभी कार्य करता है; जो स्वामी के भले की बात कहता है; जो स्वामी-भक्त व सज्जन है तथा स्वामी के बलाबल से पूरी तरह परिचित होता है; उसे अपने समान

समझकर समतुल्य व्यवहार करना चाहिए।

⁘⁘⁘

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी त्याज्यः स तादृक्त त्वरयैव भृत्यः।।26।।
जो सेवक आज्ञापालक न हो, बहस करता हो, जुबान लड़ाता हो, अपनी बुद्धि पर इतराता हो, ऐसे सेवक को शीघ्र सेवा से हटा देना चाहिए।

⁘⁘⁘

अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यै।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम्।।27।।
(1) अहंकार (2) शून्यता, (3) दयालुता, (4) निर्मल मन, (5) मन की बाते गुप्त रखना, (6) स्वास्थ्य, (7) मृदुभाषा तथा (8) कार्य को शीघ्र पूरा करना-जिस व्यक्ति में ये आठ गुण होते हैं, उसे दूत के कार्य सौंपने चाहिए। ये आठ दूत के गुण कहे गए हैं।

⁘⁘⁘

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत।।28।।
जो व्यक्ति विश्वास करके असमय किसी के घर चला जाए, रात्रि में छिपकर ताक-झाँक करता हो, राजा जिस त्री को चाहे उस पर कुदृष्टि रखता हो-ऐसे व्यक्ति से राजा को दूर रहना चाहिए।

⁘⁘⁘

न निह्नवं मत्रगतस्य गच्छेत् संसृष्टमत्रस्य कुसङ्गतस्य।
न च ब्रूयान्नाश्चसिमित्वयीति सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात्।।29।।
जो व्यक्ति राज्यसभा की गुप्त बातों को न छिपा सके, जो राजा की हाँ-में-हाँ मिलाए, उसकी गलत बातों का विरोध न करे, ऐसे व्यक्ति से राजा को दूर रहना चाहिए।

⁘⁘⁘

घृणी राजा पुँश्चली राजभृत्यः पुत्रो भाता विधवा बालपुत्रा।
सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते।।30।।
अति दयालु राजा, वेश्या, पुत्र, भाई, राजसेवक, विधवा, सैनिक तथा अधिकार से वंचित अधिकारी-इन सब से लेन-देन का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

⁘⁘⁘

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुं दमश्च।
पराक्रमश्चबहुभाषिता च दानं यथाशक्तिक्त कृतज्ञता च।।31।।
बुद्धि, उच्च कुल, इंद्रियों पर काबू, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, कम बोलना, यथाशक्ति दान देना तथा कृतज्ञता-ये आठ गुण मनुष्य की ख्याति बढ़ाते हैं।

⁘⁘⁘

एतान् गुणांस्तात महानुभावान् एको गुणः संश्रयते प्रसह्य।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान् गुणानेष गुणो बिभर्ति।।32।।
राजन! एक गुण इन सबसे अनन्य है, जो इन सभी गुणों से श्रेष्ठतर है। वह गुण है राज सम्मान। जब राजा भरे दरबार में किसी को सम्मानित करता है तो इससे राजा और सम्मान पानेवाले दोनों की शोभा में चार चाँद लग जाते हैं।

⁘⁘⁘

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः।

स्पर्शश्च गन्धश्चावेशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्चनार्यः।।33।।
प्रतिदिन स्नान करनेवाले व्यक्ति को दस लाभ प्राप्त होते हैं। ये दस लाभ हैं-(1) उत्तम स्वास्थ्य, (2) बल, (3) रूप, (4) मीठी वाणी, (5) सुंध (6) कोमलता, (7) चमक, (8) शोभा, (9) पवित्रता तथा (10) आकर्षक त्रियाँ।

⁘⁘⁘

गुणाश्च षण्मितभुक्तंक्त भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति।।34।।
जीने लायक भोजन करने वाले को ये छह गुण प्राप्त होते हैं-(1) उत्तम स्वास्थ्य, (2) दीर्घायु, (3) बल, (4) सुखी जीवन, (5) सुंदर संतान तथा (6) 'पेटू' होने की निंदा से मुक्ति।

⁘⁘⁘

अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम्।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान् गृहे न प्रतिवासयेत।।35।।
आलसी, पेटू, ईर्ष्यालु, कुटिल, क्रूर, मूढ़ तथा भद्दे पहनावे वाले व्यक्ति को अपने घर में न रुकने दें।

⁘⁘⁘

कदर्यमाक्रोशकमश्रुं च वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम्।
निष्ठुरिणं कृतवैरं कृतघ्नमेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत्।।36।।
मूर्ख, कंजूस, जंगली, कुटिल, नीच का सेवक, क्रूर, शत्रु और कृतघ्न; इन लोगों से मुसीबत में भी सहायता नहीं माँगनी चाहिए।

⁘⁘⁘

सङ्क्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं नित्यानृं चादृढभक्तिक्तकं च।
विसृष्टरागं पटुमानिनं चाप्येतान् न सेवेत नराधमान् षट्।।37।।
अत्याचारी, झूठे, धोखेबाज, चालाक, कपटी तथा आलसी-इन छह प्रकार के लोगों से सदैव दूर रहना चाहिए।

⁘⁘⁘

सहायबन्धना ह्यर्था सहायाश्चर्थबन्धनाः।
अन्योऽन्यबन्धनावेतौ विनान्योऽन्यं न सिध्यतः।।38।।
सहायक की सहायता से धन कमाया जा सकता है और धन देकर सहायक को अपने साथ जोड़े रखा जा सकता है। ये दोनों परस्पर पूरक हैं; दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं।

⁘⁘⁘

उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा वृत्तिं चे तेभ्योऽनुविधाय काञ्चित्।
स्थाने कुमारी प्रतिपाद्य सर्वा अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत्।।39।।
संतान उत्पन्न करके, उनके सारे कर्ज उतारकर, उनकी आजीविका का समुचित प्रबंध करके, बेटियों का यथायोग्य विवाह करके मनुष्य गृहस्थ धर्म छोड़कर वन में मुनि बनकर रहने को तैयार रहे।

⁘⁘⁘

हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम्।
तत् कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूं सर्वार्थसिद्धये।।40।।
जो कार्य अपने एवं सबके लिए लाभकारी और सुखद हो केवल वही करना चाहिए। इससे मनुष्य को चारों पुरुषार्थों-धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

⁘⁘⁘

वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च।
व्यवसायश्च यस्य स्यात् तस्यावृत्तिभयं कुतः।।41।।

जिस व्यक्ति में उन्नति की चाह, प्रभाव, बल, कार्य करने की ललक, दृढ़ निश्चय और विवेक-बुद्धि हो; उसकी आजीविका को कोई नहीं छीन सकता।

⁘⁘⁘

पश्य दोषान् पाण्डवैर्विग्रहे त्वं यत्र व्यथेयुरपि देवाः सशक्राः।
पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो यशःप्रणाशो द्विषतां च हर्षः।।42।।

महाराज धृतराष्ट्र! जरा सोचिए, पांडवों से युद्ध छिड़ने पर क्या कोई चैन से बैठ पाएगा? उससे इंद्र आदि देवगण भी दुखी होंगे। पुत्रों से दुश्मनी आपको भी बेचैन करेगी। आपका मान-सम्मान धूल में मिल जाएगा। हाँ, आपके दुश्मन इससे जरूर आनंदित होंगे।

⁘⁘⁘

भीष्मस्य कोपस्तव चैवेन्द्रकल्प द्रोणस्य राजश्च युधिष्ठिरस्य।
उत्सादयेल्लोकमिमं प्रवृद्धः श्वेतो ग्रहस्तिर्यगिवापतन् खे।।43।।

राजन्! भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, युधिष्ठिर और आपका सामूहिक क्रोध इस धरती को वैसे ही नष्ट कर सकता है, जैसे तिरछी गति से आकाश में चलता हुआ धूमकेतु पृथ्वी का सर्वनाश कर डालता है।

⁘⁘⁘

तव पुत्रशतं चैव कर्ण पञ्च च पाण्डवाः।
पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम्।।44।।

धृतराष्ट्र! आपके सौ पुत्र, कर्ण तथा पाँचों पांडव हिल-मिलकर इस धरती पर शासन करें। इसी में सबका कल्याण है।

⁘⁘⁘

धार्तराष्ट्रा वनं राजन् व्याघाः पाण्डुसुता मताः।
मां वनं छिन्धि सव्याघं मो व्याघा नीनशन् वनात्।।45।।
न स्याद् वनमृते व्याघान् व्याघा न स्युरृते वनम्।
वनं हि रक्ष्यते व्याघैर्व्याघान् रक्षति काननम्।।46।।

राजन्! आपके पुत्र वन के समान हैं और पांडव शेर के समान। आप वन और शेर दोनों को नष्ट होने से रोकिए, क्योंकि वन से शेर सुरक्षित रहते हैं और शेरों से वन। ये दोनों एक-दूसरे के अस्तित्व के लिए अपरिहार्य हैं।

⁘⁘⁘

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान्।
यथैषा ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः।।47।।

बुरे लोगों की रुचि दूसरों के गुणों से ज्यादा उनके दुर्गुणों के बारे में जानने में होती है।

⁘⁘⁘

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम्।।48।।

जो व्यक्ति धन, संपत्ति और ऐश्वर्य का इच्छुक है, उसे अपना पूरा जीवन धर्माचरण में बिताना आवश्यक है, क्योंकि धर्म धन के साथ वैसे ही जुड़ा है जैसे स्वर्ग के साथ अमृत।

⁘⁘⁘

यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या।।49।।

जो व्यक्ति जीवन में सदैव बुरे कर्मों से दूर रहता है, जो धर्म-कर्म को जीवन का अनिवार्य हिस्सा बना लेता है; उसे लोक-परलोक की सारी अच्छाइयों-बुराइयों का ज्ञान हो जाता है।

⁘⁘⁘

यो धममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते।
धमार्थकामसंयोग सोऽमुत्रेह च विन्दति।।50।।
जो पुरुष धर्म, अर्थ और काम का तय समय पर शात्रानुसार उपभोग करता है, वह जीते जी और मृत्यु के बाद भी इन तीनों का उपभोग करता है।

⁘⁘⁘

सन्नियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयो।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति।।51।।
राजन्! जो पुरुष क्रोध और हर्ष में अपनी भावनाओं को छिपाकर शांत बना रहता है और मुसीबत में भी धैर्य नहीं खोता, वही राजलक्ष्मी पाने का सच्चा अधिकारी होता है।

⁘⁘⁘

बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते।।52।।
महाराज! अब मैं आपको मनुष्यों के पाँच प्रकार के बलों के बारे में बताता हूँ। इनमें शारीरिक बल सबसे निकृष्ट बल होता है।

⁘⁘⁘

अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीय बलमुच्यते।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः।।53।।
गुणी और हितैषी मंत्री का मिलना दूसरा बल है। धन-संपत्ति की मौजूदगी को विद्वान तीसरा बल कहते हैं।

⁘⁘⁘

यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम्।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम्।।54।।
परिवार के बुजुगों से जो स्वाभाविक बल प्राप्त होता है उसे 'अभिजात' बेल कहते हैं; जो चौथा बल है।

⁘⁘⁘

येन त्वेतानि सर्वाणि सङ्गृहीतानि भारत।
यद् बलानां बलं श्रेष्ठं तत् प्रज्ञाबलमुच्यते।।55।।
पाँचवाँ और सबसे श्रेष्ठ बल बुद्धिबल है, जो शरीर के अन्य सभी बलों को नियंत्रित करता है।

⁘⁘⁘

महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽमीति नाश्चसेत्।।56।।
शत्रु चाहे राज्य से बहुत दूर बैठा हो तो भी राजा को उससे सदा सावधान रहना चाहिए। थोड़ी सी भी चूक और उदासीनता राजा को बड़ा नुकसान पहुँचा सकती है।

⁘⁘⁘

त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु।
भोगेष्वायुषि विश्चासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति।।57।।
बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि वे त्री, राजा, सर्प, शत्रु, भोग, धातु तथा लिखी बात पर आँख मूँदकर भरोसा न करें।

⁘⁘⁘

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तोश्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि।
न होममात्रा न च मङ्गलानि नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः।।58।।

जिस व्यक्ति को बुद्धिबल से मारा जाता है, उसके उपचार में योग्य चिकित्सक, औषधियाँ, जड़ी-बूटियाँ, यज्ञ, हवन, वेद मंत्र आदि सारे उपाय व्यर्थ हो जाते हैं।

⁘⁘⁘

'एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका।
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मागान्मम'।।
सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलेपुत्रश्च भारत।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्व ह्येतेऽतितेजसः।।59।।

हे भरतवंशी! अग्नि, सर्प, सिंह तथा अपने कुल में जनमें व्यक्तियों का कभी अनादर नहीं करना चाहिए; क्योंकि इनका तेज प्रतिशोध स्वरूप जलाकर खाक कर सकता है।

⁘⁘⁘

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु।
न चोपयुङ्क्ते तद्दारु यावन्नोद्दीप्यते परैः।।60।।
स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते।
तद्दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा।।61।।

अग्नि संसार का एक महानतम तेज है। अग्नि लकड़ी में छिपी रहती है, लेकिन जब तक लोग उसे जलाएँ नहीं, वह काठ को नहीं जलाती। जब दो लकड़ियों को रगड़कर अग्नि पैदा की जाती है तो वह अपने साथ-साथ सारे जंगल को भी जलाकर खाक कर देती है।

⁘⁘⁘

एवमेव कुले जाता पावकोपमतेजसः।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते।।62।।

श्रेष्ठ कुल में जनमें पांडव भी काष्ठ में छिपी सुसुप्त अग्नि की भाँति शांत बने हुए हैं, लेकिन यदि उन्हें उद्वेलित किया गया तो वे लपटों की तरह भड़क भी सकते हैं।

⁘⁘⁘

लताधर्मा त्वं सपुत्रः शालाः पाण्डुसुता मताः।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता।।63।।

हे राजन्! आपके पुत्र दुर्योधनादि और आप कमजोर बेलों के समान हैं और युधिष्ठिर, अर्जुन आदि पाँच पांडव विशाल वृक्ष के समान हैं। स्मरण रखें, बेलें बिना वृक्ष के सहारे आगे नहीं बढ़ सकतीं।

⁘⁘⁘

वनं राजंस्तव पुत्रोऽम्बिकेय सिंहान् वने पाण्डवांस्तात् विद्धि।
सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत् सिंहाः विनश्येयुरृते वनेन।।64।।

धृतराष्ट्र आप अपने पुत्रों को वन के समान समझिए और पांडवों को शेर के समान। शेर वन में रहकर वन की रक्षा करते हैं। लोग उसे काटने से डरते हैं अतः उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचाते। इसी प्रकार वन शेर का आश्रय है, उसके कटने पर शेर भी नष्ट हो जाएँगे। दोनों के बचाव के लिए दोनों की रक्षा जरूरी है।

⁘⁘⁘

।।पाँचवाँ अध्याय समाप्त।।

❑

6. विदुर उवाच

ऊर्ध्व प्राणा ह्युक्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते।।1।।
'अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्'।।

वि दुर ने कहा-जब कोई बुजुर्ग या आदरणीय पुरुष किसी युवा व्यक्ति के निकट आता है तो उस युवा के प्राण अपने स्थान से विचलित होने लगते हैं; उसे बहुत घबराहट होती है और वह उस बुजुर्ग पुरुष के स्वागत, सम्मान में उठ खड़ा होता है तो उसके प्राण वापस ठीक स्थान पर आ जाते हैं और उसकी घबराहट व बेचैनी भी समाप्त हो जाती है। अर्थात् बुजुगर्ों का आशीर्वाद कल्याणकारी है।

⁘⁘⁘

पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्याद्न्नमवेक्ष्य धीरः।।2।।

मनुष्य का यह कर्तव्य है कि घर आए अतिथि को योग्य आसन देकर आदरपूर्वक बैठाए, उसकी कुशलता पूछे और अपनी कुशलता बताए फिर यथाशक्ति उसे भोजन कराए।

⁘⁘⁘

यस्योदकं मधुपर्कं च गां च न मत्रवित् प्रतिगृह्लाति गेहे।
लोभाद् भयादथ कार्पण्यतो वा तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्या।।3।।

जिस घर का अतिथि आतिथेय स्वीकार नहीं करता, वहाँ भोजन ग्रहण नहीं करता, न दान-दक्षिणा लेता है, शात्रों ने उस गृहस्थ का जीवन व्यर्थ कहा है।

⁘⁘⁘

चिकित्सकः शल्कर्ताऽवकीर्णी स्तेनः क्रुरो मद्यपो भ्रूणहा च।
सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः।।4।।

बिकाऊ चिकित्सक, दूसरों को दुख पहुँचानेवाले, भोगी, चोर, क्रूर, शराबी, गर्भ-हत्या करनेवाले, सैनिक तथा ज्ञान बेचने वाले हालाँकि सम्मान के योग्य नहीं हैं, फिर भी घर आने पर इनका अतिथि सत्कार करना चाहिए।

⁘⁘⁘

अविक्रयं लवणं पक्वमन्नं दधि क्षीरं मधु तैलं घृं च।
तिला मांसं फलमूलानि शाकं रक्तंक्त वासः सवर्गन्धा गुडाश्च।।5।।

दूध, दही, नमक, पका भोजन, शहद, तेल, घी, मांस, तिल, फल, जड़ें, रक्त, लाल वत्र, इत्र-सुंध, गुड़ आदि वस्तुएँ नहीं बेचने चाहिए। प्राचीन काल में इन वस्तुओं का मुफ्त में आदान-प्रदान होता था। आज इनका व्यापार होता है। हाँ, रक्त आज भी नहीं बेचा जाता।

⁘⁘⁘

आरोषणो यः समलोष्टाश्मकाञ्चनः प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः।
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः।।6।।

संन्यासी उसी व्यक्ति को कहा जा सकता है जो क्रोध नहीं करता; सुख-दुख, शोक-हर्ष से परे हो; मिट्टी-पत्थर और सोने को एक समान समझता हो; जो न किसी से प्रेम करता हो न किसी से घृणा और शत्रुता; जो न किसी की बुराई करता हो न प्रशंसा।

⁘⁘⁘

नीवारमूलेङ्गदशाकवृत्तिः संयतात्माग्निकार्येषु चोद्यः।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः।।7।।

जो मन को नियंत्रित रखकर जंगली बीज, कंद, मूल, फल, शाक, भाजी आदि से जीवन निर्वाह करता है। नियमित यज्ञ, हवन और जप करता है तथा अभाव में भी अतिथि सेवा को सदा तत्पर रहता है, वही श्रेष्ठ तपस्वी कहलाता है।

.:..:..:.

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्चसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः।।8।।

सज्जन पुरुष की बुराई करके आप चाहे जितनी दूर जाकर छिप जाएँ, वह आपको ढूँढ़ ही लेगा। और फिर आपको कोई भी नहीं बचा पाएगा। वह आपको आपकी बुराई का दंड देगा।

.:..:..:.

न विश्चसेदविश्चस्ते विश्चस्ते नातिविश्चसेत्।
विश्चासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति।।9।।

जो व्यक्ति भरोसे के लायक नहीं है, उस पर तो भरोसा न ही करें, लेकिन जो बहुत भरोसेमंद है, उस पर भी अंधे होकर भरोसा न करें, क्योंकि जब ऐसे लोग भरोसा तोड़ते हैं तो बड़ा अनर्थ होता है।

.:..:..:.

अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रिंवदः।
श्लक्ष्णो मधुरवाक्त त्रीणां न चासां वशगो भवेत्।।10।।

मनुष्य को चाहिए कि समाज में मिलजुलकर रहे, सबको न्यायपूर्वक सबका हिस्सा दे, मीठा बोले, त्रियों का आदर करे, लेकिन उनके अधीन न हो।

.:..:..:.

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
त्रियः श्रियो गृहस्योत्तक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः।।11।।

त्रियों को घर की शोभा, पवित्रा, सौभाग्यशालिनी, पूजनीया तथा घर की लक्ष्मी कहा गया है। इसलिए इनकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

.:..:..:.

पुरन्तःपुं दद्यात् मातुर्दद्यान्महानसम्।
गोषु चात्मसमं दद्यात् स्वयमेव कृषिं व्रजेत्।।
भृत्यैवर्णाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान्।।12।।

पिता को घर की रक्षा का कार्य करना चाहिए, वफादार सेवक को गायों की सेवा में लगाना चाहिए, माता को रसोईघर का कार्य करना चाहिए, नौकर व्यापारिक कार्य करें, पिता स्वयं खेती के कार्य करे और पुत्र ब्राह्मणों-विद्वानों की सेवा।

.:..:..:.

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति।।13।।

पानी से आग, ब्राह्मण से क्षत्रिय तथा पत्थर से लोहे की उत्पत्ति हुई है, लेकिन अपने मूल स्थान पर ये शांत बने रहते हैं, वैसे पूरे ब्रह्मांड में इनका तेज व्याप्त रहता है।

.:..:..:.

नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते।।14।।

जैसे काष्ठ में अग्नि छिपी रहती है वैसे ही सज्जन पुरुष की सज्जनता, तेज, क्षमाशीलता और कुशीलता उसके अंदर छिपे रहते हैं। अर्थात् वह इनका प्रकटीकरण नहीं करता।

⁘⁘⁘

यस्य मत्रं न जानन्ति ब्राह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये।
स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्चर्यमश्नुते।।15।।

जो राजा अपनी गुप्त नीतियों को पास के, दूर के सब लोगों से छिपाए रखता है तथा पूरे राज्य पर कड़ी नजर रखता है, उसका राज्य स्थायी होता है।

⁘⁘⁘

करिष्यन्न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत्।
धर्मकामार्थकार्याणि तथा मत्रो न भिद्यते।।16।।

जो राजा कार्य करने से पहले उसका बखान न करे तथा कार्य हो जाने पर ही उसे सार्वजनिक करे, उसे नीतिवान राजा कहा जाता है।

⁘⁘⁘

गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः।
अरण्ये निःशलाके वा तत्र मत्रो विधीयते।।17।।

पहाड़ के शिखर पर, महल के एकांत कक्ष में या वन में निर्जन स्थान पर विशेष कार्यों की मंत्रणा करनी चाहिए।

⁘⁘⁘

अपण्डितो वापि सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान्।।
नापरीक्ष्य महीपालः कुर्य्यात् सचिवमात्मनः।।18।।

महाराज! जो मित्र न हो, उसे अपनी गुप्त नीति न बताएँ। इसी प्रकार मूर्ख मित्र तथा चंचल स्वभाव वाले विद्वान को भी अपनी गुप्त नीति न बताएँ। इसलिए राजा जिसे भी मंत्री बनाए, उसकी अच्छी तरह जाँच-परख कर ले।

⁘⁘⁘

अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मत्ररक्षणमेव च।
कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदु।।19।।
धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः।
गूढमत्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम्।।20।।

जो राजा अपने सभी कार्यों को जब पूरे करके सार्वजनिक करता है, तभी सभा के लोग जान पाते हैं। वह राजा श्रेष्ठ राजा कहलाता है। उसके सभी कार्य स्वतः पूरे होते रहते हैं।

⁘⁘⁘

अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति।
स तेषां विपरिभंशाद् भंश्यते जीवितादपि।।21।।

जो मोह-माया में पड़कर अन्याय का साथ देता है, वह अपने जीवन को नरक-तुल्य बना लेता है।

⁘⁘⁘

कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम्।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम्।।22।।

अच्छे कार्य करने से जीवन में अच्छा फल मिलता है। बुरे कार्य करने से पाप मिलता है जिसका पछतावा करना पड़ता है।

⁘⁘⁘

अनधीत्य यथा वेदान् न विप्र श्रादधमर्हति।
एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मत्रं श्रोतुमर्हति।।23।।

जैसे वेद-पुराण-उपनिषद् आदि धर्म-ग्रंथों के अध्ययन के बिना ब्राह्मण को कहीं सम्मान नहीं मिलता, वैसे ही जिस व्यक्ति को राजनीति के छह नियम-संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा समाश्रय का ज्ञान न हो उसे

निजी मंत्री नहीं बनाना चाहिए।

⁘⁘⁘

स्थानवृद्धिक्षययज्ञस्य षाड्गुण्यविदितान्मनः।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप।।24।।

जो राजा राजनीति के छहों नियम-संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा समाश्रय-जानता है, जो अपने बल, आकार और कमियों को जानता है, प्रजा जिसकी प्रशंसा करती है, उसी राजा का राज्य स्थायी होता है।

⁘⁘⁘

अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्यान्ववेक्षिणः।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा।।25।।

जो राजा बेकार में न तो खुश होता है, न किसी पर कुद्ध होता है, जो कार्य को कई बार जाँचता-परखता है और स्वयं पर भरोसा रखता है, उसका खजाना हमेशा धन से भरा रहता है।

⁘⁘⁘

नाममात्रेण तुष्येत् छत्रेण च महीपतिः।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान्नैकः सर्वहरो भवेत्।।26।।

राजा तभी तक 'राजा' बना रह सकता है, जब तक कि उसके सेवक उससे संतुष्ट रहें। अतः अपना 'राजछत्र' बचाए रखने के लिए राजा के लिए यह आवश्यक है कि वह धन और मान से अपने सेवकों को संतुष्ट रखे, ताकि वे उसके स्वामीभक्त बने रहें और उसके लिए कोई चुनौती न खड़ी करें।

⁘⁘⁘

ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद् त्रियं तथा।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च।।27।।

समतुल्य लोग ही एक-दूसरे को ठीक प्रकार से जान-समझ पाते हैं जैसे ज्ञानी को ज्ञानी, पति को पत्नी, मंत्री को राजा तथा राजा को प्रजा। अतः अपनी बराबरी वाले के साथ ही संबंध रखना चाहिए।

⁘⁘⁘

न शत्रुर्वशमापन्नो मोत्तक्तव्यो वध्यतां गतः।
न्यूग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद् बले सति।।28।।

कटु शत्रु को मौका मिलते ही मार देना चाहिए। यदि वह आपसे अधिक बलवान हो तो नम्रता से उसकी हाँ-में-हाँ मिलानी चाहिए और मौका मिलते ही मार देना चाहिए। क्योंकि यदि शत्रु को जीवित छोड़ा गया तो वह आपके नाश का कारण बनता है।

⁘⁘⁘

दैवतेषु प्रयत्नेन् राजसु ब्राह्मणेषु च।
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च।।29।।

ब्राह्मणों, बुजुगों, देवी-देवताओं, राजा, बच्चों और रोगियों पर क्रोध आए भी तो उसे दबा लेना चाहिए। इससे जग में यश मिलता है।

⁘⁘⁘

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम्।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते।।30।।

बिना बात के मूर्ख लोग झगड़ा करते हैं; बुद्धिमान को इस बुराई से बचना चाहिए। इससे लोक में यश मिलता है और संकटों से मुक्ति मिलती है।

⁘⁘⁘

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।

न तं भर्तारमेच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः।।31।।
न जिसकी प्रशंसा से कोई खुश होता है, न जिसके क्रोध से किसी को भय लगता है-ऐसा राजा वैसा ही होता है जैसा किसी त्री का नपुंसक पति। अर्थात् उसे कोई नहीं चाहता।

⁘⁘⁘

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये।
लोकपर्ययवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः।।32।।
यह जरूरी नहीं कि मूर्ख व्यक्ति दरिद्र हो और बुद्धिमान धनवान। अर्थात् बुद्धि का अमीरी या गरीबी से कोई संबंध नहीं है। जो ज्ञानी पुरुष लोक-परलोक की बारीकियों को समझते हैं; वे ही इस मर्म को समझ पाते हैं।

⁘⁘⁘

विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत।
धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते।।33।।
हे भरतश्रेष्ठ! मूर्ख लोग कभी अपने से बड़े और सम्मानित लोगों का आदर नहीं करते। इनसे दूर रहना चाहिए।

⁘⁘⁘

अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम्।
अनर्था क्षिप्तमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथो।।34।।
महाराज! चरित्रहीन, दूसरों की बुराई करने वाले, क्रूर, कटु भाषी, अच्छाई में बुराई ढूँढ़ने वाले मूढ़ लोग सदा संकट और दुख-दरिद्रता में डूबे रहते हैं।

⁘⁘⁘

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक्तप्रणिहिता च वाक्त।।35।।
ईमानदार, दानी, अपनी बात पर दृढ़ रहने वाले, कर्तव्यपरायण और मदुभाषी लोग शत्रुओं को भी अपना बना लेते हैं।

⁘⁘⁘

अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजु।
अपि सक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम्।।36।।
सच्चा, निःस्वार्थी, कृतज्ञ, चतुर, बुद्धिमान और सरल स्वभाव का राजा खजाना खाली होने पर भी वफादार लोगों को अपने साथ जोड़े रखता है।

⁘⁘⁘

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः।।37।।
महाराज! शात्रों में सात गुण धन-संपत्ति की बढ़ोतरी में सहायक कहे गए हैं। ये सात गुण हैं-(1) धीरज, (2) पवित्रता, (3) मन का संयम,

(4) इंद्रिय-संयम, (5) उदारता, (6) मीठी वाणी तथा (7) शुद्ध आचरण।

⁘⁘⁘

असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः।
तादृङ्नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप।।38।।
राजन्। जो राजा दुर्जन, कृतघ्न और निर्लज्ज है; जो प्रजा को कष्ट देकर अपना खजाना भरता है; जो अपने सेवकों की उपेक्षा करता है, ऐसा राजा त्याग देने के लायक है और उसका राज्य अधिक समय तक नहीं चलता।

⁘⁘⁘

न च रात्रौ सुखं शेते सर्पं इव वेश्मनि।
यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यन्तरं जनम्।।39।।
जो स्वयं बुरा आदमी होता है, लेकिन अपने अच्छे संबंधियों की बुराई करेता है, वह कभी चैन की नींद नहीं सो पाता। उसके सीने पर रात भर साँप लोटते रहते हैं।

⁘⁘⁘

येषु दुष्टेषु दोषः स्याद् योगक्षेमस्य भारत।
सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत्।।40।।
राजन्! जिन लोगों की बुराई करने से संकट की स्थिति पैदा हो जाती है, ऐसे सज्जनों को सदैव देवता की भाँति पूजा जाना चाहिए, ताकि राज्य विपदा से बचा रहे।

⁘⁘⁘

येऽर्था त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः।।41।।
आलसी, अधम, दुर्जन तथा त्री के हाथों सौंपी संपत्ति बरबाद हो जाती है। इनसे सावधान रहना चाहिए।

⁘⁘⁘

यत्र त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता।
मज्जन्ति तेऽवशा राजन् नद्यामश्मप्लवा इव।।42।।
महाराज! जिस राज्य पर जुआरी, बच्चे या त्री का शासेन हो, वहाँ के लोग पत्थर की नाव पर सवार होकर नदी पार करने की कोशिश में डूब मरते हैं। अर्थात् इन लोगों का शासन क्षण-भंगुर होता है।

⁘⁘⁘

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत।
तानहं पण्डितान् मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गिनः।।43।।
जो लोग जरूरत के मुताबिक काम करते हैं, लोभ में पड़कर अधिक के पीछे नहीं भागते, वे मेरी दृष्टि में ज्ञानी हैं, क्योंकि अधिक के पीछे भागने से संघर्ष पैदा होते हैं।

⁘⁘⁘

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः।।44।।
चापलूस, जुआरी और गंदी त्रियाँ जिसकी बड़ाई करती हैं, ऐसा व्यक्ति जीते-जी मुरदे के समान है। अर्थात् उसका जीवन बेकार है।

⁘⁘⁘

हित्वा तान् परमेष्वासान् पाण्डवानमितौजसः।
अहितं भारतैश्चर्यं त्वया दुर्योधने महत्।।45।।
तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं तस्मात् त्वमचिरादिव।
ऐश्चर्यमदसम्मूढं बलिं लोकत्रयादिव।।46।।
राजन्! आपने राजा बनने के योग्य तेजस्वी और पराक्रमी पांडवों को त्याग कर दुर्योधन के हाथ में राज्यलक्ष्मी सौंपकर बहुत बड़ी गलती की है। अब आपको पछताना होगा, जब आप दुर्योधन को राजा बलि की भाँति नष्ट होता देखेंगे।

⁘⁘⁘

।।छठा अध्याय समाप्त।।

❑

7. धृतराष्ट्र उवाच

अनीश्चरोऽयं पुरुषो भवाभवे सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा।
धात्रा तु दिष्टस्यवशं कृतोऽयं तस्माद् वदत्वं श्रवणे धृतोऽहम्।।1।।

धृ तराष्ट्र ने कहा-महात्मा विदुर! धन-संपत्ति और मृत्यु मनुष्य अपनी इच्छा से नहीं पा सकता। मनुष्य को भगवान् ब्रह्मा ने भाग्य से बाँध रखा है। इस विषय में मैं तुम्हारी व्याख्या सुनना चाहता हूँ।

⁘⁘⁘

विदुर उवाच

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बुद्धयवज्ञानमवमानं च भारत।।2।।

विदुर ने कहा-राजन्! समय खराब हो तो देवगुरु बृहस्पति की भी कोई नहीं सुनता। उन्हें भी अज्ञानी ठहराया जाता है और उन्हें अपमान सहना पड़ता है।

⁘⁘⁘

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः।।3।।

कोई पुरुष दान देकर प्रिय होता है, कोई मीठा बोलकर प्रिय होता है, कोई अपनी बुद्धिमानी से प्रिय होता है; लेकिन जो वास्तव में प्रिय होता है, वह बिना प्रयास के प्रिय होता है।

⁘⁘⁘

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह।।4।।

जो प्रिय लगता है उसके बुरे काम भी अच्छे लगते हैं; लेकिन जो अप्रिय है, वह चाहे बुद्धिमान, सज्जन या विद्वान हो, बुरा ही लगता है।

⁘⁘⁘

उक्तंक्त मया जातमात्रेऽपि राजन् दुर्योधनं त्यज पुत्रं त्वमेकम्।
तस्य त्यागात् पुत्रशतस्य वृद्धिरत्यागात् पुत्रशतस्य नाशः।।5।।

महाराज! दुर्योधन के जन्म के समय ही मैंने आपको सावधान किया था कि यह पुत्र आपके कुल का नाश कर देगा, इसे त्याग दें, लेकिन मोहवश आपने मेरी बात नहीं मानी। अगर आप एक दुर्योधन को त्याग देते तो आपके सौ पुत्र उन्नति करते, अब उनका नाश अवश्यंभावी है।

⁘⁘⁘

न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत्।
क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो क्षयो वृद्धिमावहेत्।।6।।
न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत्।
क्षयः स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत्।।7।।

राजन्! जो लाभ भविष्य में बड़े विनाश का कारण बने, उसे त्याग देना चाहिए। और जो हानि भविष्य में बड़े लाभ का कारण बने, उसका सम्मान करना चाहिए। वास्तव में हम जिसे हानि कहते हैं, यदि वह लाभ का कारण हो, तो वह हानि है ही नहीं। परंतु उस लाभ को भी हानि ही मानना चाहिए, जो बड़ी क्षति का कारण बने।

⁘⁘⁘

समृद्धा गुणतः केचिद् भवन्ति धनतोऽपरे।
धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय।।8।।

धृतराष्ट्र! कुछ लोग धन से बड़े होते हैं, कुछ लोग गुणों से। विद्वानों ने कहा है कि धनी लोग भी यदि गुणहीन हैं तो उन्हें छोड़ देना चाहिए।

⁘⁘⁘

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वं त्वमायतोयुक्तंक्त भाषसे प्राज्ञसम्मतम्।
न चोत्सहे सुं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः।।9।।

धृतराष्ट्र ने कहा-विदुर! तुम्हारी बात शात्र-सम्मत है और इसके परिणाम भी सदैव लाभदायक होते हैं। यह भी ठीक है कि धर्म के मार्ग पर चलनेवालों की ही जीत होती है, तो भी मैं अपने पुत्र दुर्योधन को नहीं त्याग सकता।

⁘⁘⁘

विदुर उवाच

अतीवगुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते।।10।।

जो पुरुष सज्जन और गुणी होता है, वह थोड़े लोगों की मृत्यु को भी अनदेखा नहीं कर सकता। अर्थात् थोड़ी हानि ही बड़ी हानि की ओर ले जाती है।

⁘⁘⁘

परापवादनिरताः परदुखोदयेषु च।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः।।11।।
सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद् भयम्।
अथादाने महान् दोषः प्रदाने च महद् भयम्।।12।।
ये वै भेदनशीलास्तु सकामा नित्रपाः शठाः।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः।
युक्तक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत्।।13।।

दूसरों की बुराई करनेवाले, लोगों को दुख देनेवाले, आपसी मतभेद पैदा करेनवाले, अशुभ देखनेवाले, अपराधी, आचरणहीन, लज्जाहीन, लोभी, पापी, अत्याचारी और क्रूर लोग असामाजिक माने गए हैं, इनका त्याग कर देना चाहिए।

⁘⁘⁘

निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति।
या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत् सुखम्।।14।।
यतते चापवादा यत्नमारभते क्षये।
अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमधिगच्छति।।15।।
तादृशै सङ्गतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः।
निशम्य निपुणं बुद्धया विद्वान् दूराद् विवर्जयेत्।।16।।

जो लोग स्वार्थी होते हैं, वे मतलब निकल जाने पर दोस्ती तोड़ लेते हैं; उनको प्रेम भी समाप्त हो जाता है। ऐसे स्वार्थी फिर अपने दोस्त की ही निंदा आरंभ कर देते हैं और उसके नाश से भी नहीं चूकते। ऐसे अशांत, मतलबी, क्रूर, इंद्रिय-लोलुप व्यक्ति से दूर रहने में ही भलाई है।

⁘⁘⁘

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम्।
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते।।17।।

दीन-दुखियों, रोगियों, दरिद्रों, अपने संबंधियों आदि के कल्याण में लगा व्यक्ति-संपन्न और सुखी जीवन बिताता है।

⁘⁘⁘

ज्ञातयो वर्धनायास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम्।
कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात् साधु समाचर।।18।।
श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसक्रियाम्।
विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ।
किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकाक्षिणः।।19।।
महाराज! जो लोग अपना कल्याण चाहते हैं, उन्हें अपने कुटुंबियों की उन्नति के लिए उनकी सहायता करनी चाहिए। कुटुंबी चाहे गुणहीन ही क्यों न हों, उनकी सहायता करनी चाहिए और यदि कुटुंबी गुणी हों, फिर तो उनकी पूजा करनी चाहिए। इससे निश्चित ही वंश-वृद्धि और राजलक्ष्मी मिलती है।

⁘⁘⁘

प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशाम्पते।
दीयतां ग्रामकाः केचित् तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर।।20।।
राजन्! मेरी प्रार्थना है, पांडवों को आपकी सहायता की आवश्यकता है, आप उन पर दया कीजिए। उनके जीवन निर्वाह के लिए उन्हें कुछ गाँव दे दीजिए।

⁘⁘⁘

एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप।
वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम्।।21।।
मेरे भाई! ऐसा करने से चारों ओर आपकी कीर्ति फैलेगी। आप बुजुर्ग हैं, आपके पुत्रों को आपकी बात माननी चाहिए। उन्हें सद्मार्ग पर चलाना आपका कर्तव्य है।

⁘⁘⁘

मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्धितैषिणम्।
ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभार्थिना।
सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ।।22।।
मेरा भी यह कर्तव्य है कि मैं सदा आपके भले की बात करूँ। मैं आपकी भलाई चाहता हूँ इसलिए कहता हूँ कि अपने संबंधियों से लड़ाई मोल न लें। अपने सुख-दुख उनके साथ बाँटें।

⁘⁘⁘

सम्भोजनं सकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन।।23।।
महाराज! कुटुंबियों का कभी विरोध न करें। उनसे प्रेम करें, उनके साथ विचारों का आदान-प्रदान करें और प्रेम से मिल-बैठकर भोजन करें, इसी में सबका कल्याण है।

⁘⁘⁘

ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च।।24।।
राजन्! कुटुंबी लोग तारनेवाले भी होते हैं और डुबानेवाले भी। जो कुटुंबी सज्जन होते हैं वे 'तारक' होते हैं और वो कुटुंबी दुर्जन होते हैं वे 'मारक'।

⁘⁘⁘

सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान् प्रति मानद।
अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृस्त्वं भविष्यसि।।25।।
महाराज धृतराष्ट्र! आप पांडवों का मान-सम्मान करें। अगर आपको उनकी सुरक्षा मिल गई तो फिर संसार में आपको कोई नहीं हरा सकेगा।

⁘⁘⁘

श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति।

दिग्धहस्ं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति।।26।।

जैसे हिरन तीर से मारा जाता है, लेकिन पाप शिकारी को लगता है, वैसे ही यदि आपके किसी पुत्र के कारण आपके कुटुंबियों को कष्ट पहुँचेगा तो उसका पाप आपको ही लगेगा। कुफल आपको ही भोगना पड़ेगा।

पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति।
तान् वा हतान् सुतान् वापि श्रुत्वा तदनुचिन्तय।।27।।

नरेंद्र! क्या पांडवों या अपने पुत्रों की मृत्यु की खबर सुनकर आपको खुशी होगी? मेरे संकेत को समझिए।

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा।
आदावेव न तत् कुर्यादध्रुवे जीविते सति।।28।।

जो काम करके अंत काल में अकेले बैठकर पछताना पड़े, उसे शुरू ही नहीं होने देना चाहिए।

न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात्।
शेषसम्प्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्स्वेव तिष्ठति।।29।।

जीवन में अनीतिपूर्ण कार्य आम मनुष्य से हो ही जाते हैं। लेकिन अब तक जो अनीतियाँ हो चुकी हैं, उन्हें भूलकर आगे नीतियों के उल्लंघन पर रोक लगनी चाहिए। मुझे विश्वास है आप बुद्धिमानी से इस पर विचार करेंगे।

दुर्योधनेन यद्येतत् पापं तेषु पुरा कृतम्।
त्वया तत् कुलवृद्धेन प्रत्यानेयं नरेश्वर।।30।।

महाराज धृतराष्ट्र! आप कौरव और पांडवों के बुजुर्ग हैं, अगर दुर्योधन के पांडवों के साथ छल-कपट दिया है तो यह आपका दायित्व है कि आप उनके साथ न्याय करें। अर्थात् अगर दुर्योधन ने छलपूर्वक राज्य हड़प लिया है तो उसे पांडवों को वापस दिलाएँ।

तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः।
भविष्यसि नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम्।।31।।

फिर आप पांडवों को उनका राज्य वापस दिलवा देते हैं तो आप पर लगा पाप का पक्षधर होने का कलंक धुल जाएगा और संसार में आपकी प्रतिष्ठा होगी।

सुव्याहृतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः।
अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति।।32।।

महाराज! जो व्यक्ति बात के मर्म को समझकर उसी के अनुसार कार्य करता है, संसार में उसकी कीर्ति अक्षुण्ण रहती है।

असम्यगुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि।
उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम्।।33।।

वह ज्ञान बेकार है जिससे कर्तव्य का बोध न हो; और वह कर्तव्य भी बेकार है जिसकी कोई सार्थकता न हो।

पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्धते।।34।।
यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते।
अगाधपङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते।।35।।

जो मनुष्य गलत कार्यों से दूर रहता है, उसकी वृद्धि निश्चित है। किंतु जो पाप करता जाता है, उसके परिणाम के बारे में नहीं सोचता, उसे नरक की कष्टकारी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।

⁘⁘⁘

मत्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत्।
अर्थसन्ततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः।।36।।
मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम्।
दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि।।37।।

धन-संपत्ति और मान-सम्मान की रक्षा के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह छह बातों के प्रति सावधान रहे। वे छह बाते हैं-(1) मदिरापान, (2) कुटिल मंत्रियों पर भरोसा, (3) नींद, (4) गुप्तचरों की नियुक्ति, (5) आँख-मुँह के विकार तथा (6) मूर्ख दूत पर भरोसा।

⁘⁘⁘

द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप।
त्रिवर्गाचरणे युक्तक्तः स शत्रूनधितिष्ठति।।38।।

महाराज! जो पुरुष इन छह बातों के प्रति सदा सावधान रहता है, वह राज्य के सारे ऐश्वर्य भोगता है और उसके शत्रु भी उसके नियंत्रण में रहते हैं।

⁘⁘⁘

न वै श्रुतविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा।
धर्मार्थौं वेदितुं शक्यौ बृहेस्पतिसमैरपि।।39।।

राजन्! कोरे शात्र ज्ञान से राजधर्म नहीं निभता। इसके लिए व्यावहारिक ज्ञान भी आवश्यक है। व्यावहारिक ज्ञान बुजुगर्ों की सेवा से अर्जित होता है।

⁘⁘⁘

नष्टं समुद्दे पतितं नष्टं वाक्यम शृण्वति।
अनात्मनि श्रुं नष्टं हुतमनग्निकम्।।40।।

समुद्र में गिरी हुई वस्तु और ग्रहण न करने पर ज्ञान की बात नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार अनाचारी का शात्र ज्ञान और बिना अग्नि के किया गया यज्ञ नष्ट हो जाता है।

⁘⁘⁘

मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्धया सम्पाद्य चासकृत्।
श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैमैत्रीं समाचरेत्।।41।।

विद्वानों से मित्रता करने से पूर्व उनकी भली प्रकार से परीक्षा करें। इसके लिए उनके पुराने कार्यों, योग्यताओं और उपलब्धियों की भी पड़ताल करें।

⁘⁘⁘

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम्।।42।।

सज्जनता से अपकीर्ति दूर की जा सकती है, बल से संकट टाले जा सकते हैं, क्षमा से क्रोध को शांत किया जा सकता है तथा शिष्ट व्यवहार से बुरी आदतों को बदला जा सकता है।

⁘⁘⁘

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया।
परीक्षेत कुं राजन् भोजनाच्छादनेन च।।43।।

हे राजन्! खान-पान, जन्म-स्थान, घर-बार, व्यवहार, भोजन तथा कपड़ों से किसी के वंश की परीक्षा करनी चाहिए।

⁘⁘⁘

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते।
अपि निर्मुक्तदेहस्य कामसक्तस्य किं पुनः।।44।।
अभिमान रहित व्यक्ति भी इच्छित वस्तु को सामने देखकर उसे खुशी-खुशी ग्रहण कर लेता है, तो जो उसका इच्छुक है उसका तो कहना ही क्या।

⁘⁘⁘

प्राज्ञोपसेविनो वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम्।
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत्।।45।।
ज्ञानियों के सेवक, चिकित्सक, धर्मनिष्ठ, मधुर-भाषी, मन को हरने वाले, निर्मल मित्रों की हमेशा रक्षा और सहायता करनी चाहिए।

⁘⁘⁘

दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लुर्हमान्।
धर्मापेक्षी मृदुर्हमान् स कुलीनशतात् वरः।।46।।
जो मनुष्य मान-मर्यादा का पालन करता है, धर्मनिष्ठ है, अपनी सज्जनता नहीं त्यागता, वह चाहे उत्तम कुल में पैदा हुआ हो या नीच कुल में, हजारों कुलीनों से श्रेष्ठ है।

⁘⁘⁘

ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृं निभृतेन वा।
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोमैत्री न जीवर्यति।।47।।
दो व्यक्तियों की मित्रता तभी स्थायी रह सकती है जब उनके मन से मन, गूढ़ बातों से गूढ़ बातें तथा बुद्धि से बुद्धि मिल जाती है।

⁘⁘⁘

दुर्बुद्धिमकृतप्रं छन्नं कूं तृणैरिव।
विवर्जयति मेधावी तस्मिन् मैत्री प्रणश्यति।।48।।
बुद्धिमान व्यक्ति को दुष्टों तथा मूखर्ों की संगति घास से ढँके कुओं के समान छोड़ देनी चाहिए, क्योंकि इनकी संगति से सदैव हानि होती है।

⁘⁘⁘

अविलप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च।
अथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेत् बुधः।।49।।
जो व्यक्ति अहंकारी, क्रोधी, क्रूर, नास्तिक तथा मूर्ख लोगों से मैत्री नहीं करता, वही बुद्धिमान है।

⁘⁘⁘

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिक्तकम्।
जितेन्द्रिं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते।।50।।
सच्चे, धर्मनिष्ठ, कृतज्ञ, दयालु, संयमी, सदाचारी तथा पेमी पुरुष को अपना मित्र बनाना चाहिए। इनकी मित्रता स्थायी होती है।

⁘⁘⁘

इन्द्रियाणामनुत्सगर्ौं मृत्युनापि विशिष्यते।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्ग सादयेद् दैवतानपि।।51।।
इंद्रियों को अपने इच्छित कार्यों से सर्वथा दूर रखना तो मृत्यु को जीतने से भी कठिन है, लेकिन उन्हें बेलगाम छोड़ दिया जाए तो वे शीलवान देवगण को भी नष्ट कर देती हैं।

⁘⁘⁘

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चावमानना।।52।।
प्राणिमात्र के प्रति नरम व्यवहार, केवल गुण देखना, धीरज, क्षमाशीलता, तथा मित्रों का आदर करना-विद्वानों के अनुसार ये सभी सद्गुण दीर्घायु में सहायक हैं।

⁘⁘⁘

अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते।
मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम्।।53।।
अन्याय और उत्पीड़न से छीने गए ऐश्वर्य को जो धीर पुरुष सोच-समझकर, धैर्यपूर्वक, राजनीति के बल पर पुनः प्राप्त करना चाहता है, वह सच्चा वीर है।

⁘⁘⁘

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते।।54।।
जो पुरुष भूतकाल की अपनी गलतियों को जानता है, जो अपने वर्तमान कर्तव्य को समर्पित भाव से करता है और जो भावी दुखों को टालने की विधि जानता है-वह कभी ऐश्वर्यहीन नहीं होता।

⁘⁘⁘

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते।
तदेवापहरत्येनं तस्मात् कल्याणमाचरेत्।।55।।
मन, वचन और कर्म से हम लगातार जिस वस्तु के बारे में सोचते हैं, वही हमें अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। अतः हमें सदा शुभ चीजों का चिंतन करना चाहिए।

⁘⁘⁘

मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम्।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम्।।56।।
मांगलिक चीजों (रत्न, मूर्तियाँ आदि) का स्पर्श, स्वभाव की चंचलता पर नियंत्रण, धर्म-ग्रंथों का श्रमण-मनन-चिंतन, सज्जनता, कर्तव्य-परायणता और महापुरुषों का सानिध्य-ये बातें शुभ और कल्याणकारी हैं।

⁘⁘⁘

अनिर्वेदः श्रियो मूं लाभस्य च शुभस्य च।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्त्यमश्नुते।।57।।
अपने काम में लगे रहनेवाला व्यक्ति सदा सुखी रहता है। धन-संपत्ति से उसका घर भरा-पूरा रहता है। ऐसा व्यक्ति यश-मान-सम्मान पाता है।

⁘⁘⁘

नातः श्रीमत्तरं किञ्चिदन्यत् पथ्यतमं मतम्।
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा।।58।।
मेरे भाई! योग्य और सामर्थ्यवान पुरुष का सबसे बड़ा गुण 'क्षमा' को माना गया है। जो हर स्थिति में क्षमा को तत्पर है, लक्ष्मी कभी उसका साथ नहीं छोड़ती।

⁘⁘⁘

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात्।
अर्थानर्थौं समो यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता।।59।।
जो पुरुष असमर्थ है, सबको क्षमा करना उसकी मजबूरी है, जो समर्थ है, वह धर्म की दृष्टि से विचार कर सबको क्षमा करे तथा जिसके लिए क्या अच्छा, क्या बुरा-सब समान है, उस अबोध को क्षमा करने में ही उसकी

भलाई है।

⁘⁘⁘

यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत्।।60।।
व्यक्ति को यह छूट है कि वह न्यायपूर्वक और धर्म के मार्ग पर चलकर इच्छानुसार सुखों का भरपूर उपभोग करे, लेकिन उनमें इतना आसक्त न हो जाए कि अधर्म का मार्ग पकड़ ले।

⁘⁘⁘

दुखर्त्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः।।61।।
निठल्लों, असंतुष्टों, असंयमी, निस्तेज, दुखी, पीड़ित, नास्तिक तथा पागलों के घरों से लक्ष्मी दूर रहती हैं।

⁘⁘⁘

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवाद् सव्यपत्रपम्।
अशक्तं मन्यमानास्ते धर्षयन्ति कुबुद्धयः।।62।।
धीर पुरुष सरल, संयमी, विनयी और लज्जाशील होते हैं, जिन्हें दुर्जन लोग कमजोर मानकर तिरस्कृत करते हैं। लेकिन इसकी दुर्जनों को बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है।

⁘⁘⁘

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम्।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति।।63।।
श्रेष्ठ दानवीर, श्रेष्ठ योद्धा, श्रेष्ठ आस्तिक, श्रेष्ठ ज्ञानी लेकिन अहंकारी और सर्वश्रेष्ठ पुरुष के पास जाने से लक्ष्मी बचती हैं, क्योंकि वे इन्हें अति से बचाना चाहती हैं।

⁘⁘⁘

न चातिगुणवत्स्वेषा नान्यन्तं निर्गुणेषु च।
नेषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते।
उन्मत्ता गौरिवान्धा श्री क्वचिदेवावतिष्ठते।।64।।
लक्ष्मी न तो प्रंड ज्ञानियों के पास रहती हैं, न नितांत मूखरों के पास। न तो इन्हें ज्ञानियों से लगाव है न मूखरों से। जैसे बिगड़ैल गाय को कोई-कोई ही वश में कर पाता है, वैसे ही लक्ष्मी भी कहीं-कहीं ही ठहरती हैं।

⁘⁘⁘

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम्।
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम्।।65।।
यज्ञ, हवन और अनुष्ठान-वेदों के फल हैं। शिष्टता, सदाचार और सुलक्षण-शात्र-अध्ययन के फल हैं। शारीरिक सुख एवं संतान-प्राप्ति-पत्नी के फल हैं तथा दान एवं उपभोग-धन के फल हैं।

⁘⁘⁘

अधर्मोपार्जितर्थैर्य करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्तेऽर्थस्य दुरागमात्।।66।।
जो व्यक्ति गलत कार्यो से धन कमाकर श्राद्ध, यज्ञ, हवन आदि अनुष्ठान करता है, मृत्यु के बाद उसे इन कर्मों का सुफल नहीं मिलता, क्योंकि अधर्म से कमाए धन से धर्म अर्जित नहीं होता।

⁘⁘⁘

कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रासावापत्सु सम्भमे।
उद्यतेषु च शत्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम्।।67।।

जिस पुरुष का अपने मन पर नियंत्रण होता है, वह मुसीबत में, युद्ध के समय, दुर्गम वन में, कठिन परिस्थिति में-न तो धैर्य खोता है, न भयभीत होता है।

⁘⁘⁘

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु।।68।।
कर्तव्यनिष्ठा, इंद्रियनिग्रह, कौशल, सावधानी, धीरज, बुद्धिमानी और विचारशीलता-ये गुण उन्नति के मूलाधार हैं।

⁘⁘⁘

तपोबलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम्।।69।।
तपस्वियों का बल तप है, वेद जाननेवालों का बल वेद है, दुष्टों का बल हिंसा है और गुणियों का बल क्षमा है।

⁘⁘⁘

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्।।70।।
जल पीने, कंदमूल खाने, फल खाने, दूध पीने, घी खाने, ब्राह्मण की बोत रखने के लिए खाने, गुरु की आज्ञा मानकर खाने से व्रत भंग नहीं होता।

⁘⁘⁘

न तत् परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
सङ्ग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते।।71।।
अगर धर्म के सार को जानना है तो वह यही है कि जो काम आपको स्वयं के लिए अच्छा न लगे, उसे दूसरे के लिए न करें।

⁘⁘⁘

अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम्।।72।।
क्रोध को प्रेम से, दुष्ट को सद्व्यवहार से, कंजूस को दान से तथा झूठ को सच से जीतना चाहिए।

⁘⁘⁘

त्रीन्धूर्त्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके।।73।।
नौ लोगों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। ये नौ लोग हैं-(1) कायर, (2) चोर, (3) कृतघ्न, (4)नास्तिक, (4) स्त्री, (5) कुटिल, (6) क्रोधी, (7) अहंकारी, (8) धूर्त तथा (9) आलसी।

⁘⁘⁘

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।74।।
बड़ों की सेवा तथा विद्वानों का मान-सम्मान करने वालों की कीर्ति, आयु, ज्ञान और पराक्रम बढ़ते हैं।

⁘⁘⁘

अतिक्लेशेन येऽर्था स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा।
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः।।75।।
कष्ट से, अधर्म से तथा शत्रुओं की सेवा करके कमाए धन से अनादर व अपयश मिलता है। इससे दूर रहना चाहिए।

⁘⁘⁘

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम्।
निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम्।।76।।
विद्या के बिना मनुष्य, संतान के बिना रति-कर्म, भूखी प्रजा तथा राजा रहित राज्य दुख उठाते हैं।

⁘⁘⁘

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असम्भोगो जरा त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा।।77।।
ज्यादा चलने से मनुष्य बूढ़ा होता है, ज्यादा पानी गिरने से पहाड़ों की आयु घटती है, रति-कर्म न करने से त्रियों का बुढ़ापा जल्दी आता है और कड़वी बोली से मन बुढ़ा जाता है।

⁘⁘⁘

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रं मलम्।
मलं पृथिव्या बाह्लीकाः पुरुषस्यानृतं मलम्।
कौतूहलमलाः साध्वी विप्रवासमलाः त्रियः।।78।।
नियमित पठन-पाठन-अध्ययन न करना वेदों का मल है, नियमित व्रत-पूजन न करना ब्राह्मणों का मल है, बाह्वीक देश (बलख-बुखारा) धरती का मल है, सच न बोलना मनुष्य का मल है, ताक-झाँक करना विवाहिता का मल है तथा परदेश में रहना त्रियों का मल है।

⁘⁘⁘

सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम्।।79।।
चाँदी सोने का मल है, राँगा चाँदी का मैल है, सीसा धातु राँगे का मल है तेथा सीसे का मल उसी का मल है।

⁘⁘⁘

न स्वप्नेन जयेन्निद्रं न कामेन जयेत् त्रियः।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत्।।80।।
सोकर नींद को नहीं जीता जा सकता, शारीरिक तुष्टि द्वारा त्री को नहीं जीता जा सकता, लकड़ी डालकर आग को नहीं जीता (बुझाया) जा सकता तथा शराब पीकर इसकी लत को नहीं जीता जा सकता।

⁘⁘⁘

यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम्।।81।।
जो पुरुष दान से मित्र को जीत लेता है, युद्ध से शत्रु को जीत लेता है तथा पालन-पोषण से त्री को जीत लेता है, उसका जीवन सफल है।

⁘⁘⁘

सहस्त्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते।।82।।
महाराज धृतराष्ट्र! जो हजारों कमाता है वह जीता है और जो सैकड़ों कमाता है वह भी जीता है। इसलिए अधिक की इच्छा न करें। यह न सोचें के अधिक नहीं होगा तो जीवन ही नहीं चलेगा।

⁘⁘⁘

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति।।83।।
महाराज! लोभी के लिए तो पृथ्वी की सारी संपत्ति, धन, धान्य, पशु, ऐश्वर्य-सब-के-सब कम पड़ जाएँगे। जो यह बात समझ जाता है, वह लोभ में नहीं पड़ता।

⁘⁘⁘

राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर।
समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु च।।84।।

राजन्। मेरी पुनः आपसे प्रार्थना है, अगर आप पांडवों को भी अपने पुत्रों के समान समझते हैं, वैसा ही प्रेम करते हैं तो उन्हें उनका अधिकार दे दीजिए।

⁘⁘⁘

।।सातवाँ अध्याय समाप्त।।

❑

8. विदुर उवाच

येऽभ्यर्चितः सरिसज्जमानः करोत्यर्थं शक्तिक्तमहापयित्वा।
क्षिपं यशस् समुपैति सन्तमलं प्रसन्न हि सुखाय सन्तः।।1।।

वि दुर कहते हैं-जो पुरुष यथाशक्ति अपने कार्य में लगा रहता है, जो कर्म का फल ईश्वर के ऊपर छोड़ देता है, जिसके कार्य की संतजन भी प्रशंसा करते हैं, उस पुरुष की कीर्ति-पताका चारों कोनों में फहराती है।

⁘⁘⁘

महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तंक्त यः सन्त्यजत्यनपाकृष्ट एव।
सुखं सुदुखान्यवमुच्य शेते जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य।।2।।

जो पुरुष बेईमानी के धन को ठुकरा देता है, वह रात को उसी प्रकार चैन से सोता है जैसे काँचली को त्यागने के बाद सर्प।

⁘⁘⁘

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया।।3।।

गलत कार्यों से तरक्की करना, अपने हितचिंतक की चुगली करना तथा बुजुगर्ों से छल करना-ये तीनों कार्य ब्रह्म-हत्या के समान पापदायक हैं।

⁘⁘⁘

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवत्रयः।।4।।

अच्छाई में बुराई देखना मृत्यु जैसी कष्टकारी अवगुण है। बढ़-चढ़कर बोलना धन-हानि का कारक है। जल्दबाजी, बात पर ध्यान न देना तथा आत्मप्रशंसा-ये तीन अवगुण ज्ञान के शत्रु हैं।

⁘⁘⁘

आलस् मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथा त्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्यु सदा विद्यार्थिनां मताः।।5।।

विद्यार्थियों को सात अवगुणों से दूर रहना चाहिए। ये हैं-(1) आलस, (2) नशा, (3) चंचलता, (4) गपशप, (5) जल्दबाजी, (6) अहंकार और (7) लालच।

⁘⁘⁘

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेत् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।।6।।

सुख चाहने वाले से विद्या दूर रहती है और विद्या चाहने वाले से सुख। इसलिए जिसे सुख चाहिए, वह विद्या को छोड़ दे और जिसे विद्या चाहिए, वह सुख को।

⁘⁘⁘

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना।।7।।

लकड़ियाँ आग को तृप्त नहीं कर सकतीं; नदियाँ समुद्र को तृप्त नहीं कर सकतीं; सभी प्राणियों की मृत्यु यम को तृप्त नहीं कर सकती तथा पुरुषों से कामी त्री की तृप्ति नहीं हो सकती। अर्थात् तृप्ति के पीछे भागना व्यर्थ है।

⁘⁘⁘

आशा धृतिंहन्ति समृद्धिमन्तकः क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता।

अपालनं हन्ति पशूंश्चराजन्नेकः क्रुद्धोब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम्।।8।।
महाराज धृतराष्ट्र! उम्मीद धैर्य का विनाशी कर देती है, मृत्यु भोगों का, क्रोध धन-संपत्ति का, कायरता कीर्ति का, देखभाल का अभाव पशु-धन का नाश कर देता है और अगर एक अकेला, ब्राह्मण रुष्ट हो जाए तो वह बड़े-से-बड़े राज्य का नाश कर देता है।

⁘⁘⁘

अजाश्च कांस्यं रजतं च नित्यं मध्वाकर्ष शकुनिः श्रोत्रियश्च।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीन एतानि ते सन्तु गृहे सदैव।।9।।
राजन्! आपके यहाँ बकरियाँ, चाँदी व काँसे के बरतन, शहद का भंडार, विष-परीक्षण का यंत्र, शकुन-अपशकुन बताने वाला पक्षी, व्रती ब्राह्मण, बुजुर्ग तथा दुखी कुटुंबजन सब-के-सब रहें। अर्थात् इन सबके आपसी सहयोग से ही एक सुखी कुटुंब का निर्माण होता है।

⁘⁘⁘

अजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी।
विषमौदुम्बरं शङ्खः स्वर्णनाभोऽथ रोचना।।10।।
गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत्।
देव ब्राह्मणपूजार्थमतिथीनां च भारत।।11।।
हे धृतराष्ट्र! मनु महाराज ने कहा है कि देव, ब्राह्मण तथा अतिथियों के पूजन-वंदन के लिए घर में बकरियाँ, बैल, चंदन, वीणा, दर्पण, शहद, घी, लोहे व ताँबे के बरतन, शंख, शालिग्राम तथा सिंदूर आदि वस्तुएँ होनी चाहिए।

⁘⁘⁘

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्।
न जातुकामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः।।12।।
भाता धृतराष्ट्र! अब मैं आपको एक विशेष हितकारी बात बताता हूँ। इसे ध्यान देकर सुनें। मनुष्य को अपनी जीवन-रक्षा के बिना किसी भी स्थिति में अधर्म का सहारा नहीं लेना चाहिए।

⁘⁘⁘

नित्यो धर्म सुखदुखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।
त्यक्त्वा नित्यंप्रतिष्ठिस्व नित्ये सन्तुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः।।13।।
राजन्! संसार में धर्म ही शाश्वत (निरंतर रहनेवाला) है, सुख-दुख अशाश्वत हैं; जीव शाश्वत है, लेकिन इसका कारण यह शरीर अशाश्वत् है। अतः आपके लिए यही उपयुक्त है कि आप शाश्वत में अपना मन लगाएँ, क्योंकि इसी में संतुष्टि और श्रेष्ठता है।

⁘⁘⁘

महाबलान् पश्य महानुभावान् प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम्।
राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान् गतान्नरेन्द्रान् वशमन्तकस्य।।14।।
महाराज! तनिक उन बलवान राजा-महाराजाओं के बारे में सोचिए जो राज्य, ऐश्वर्य और श्री का भोग करके सब वैभव यहीं छोड़कर यमलोक चले गए।

⁘⁘⁘

मृं पुत्रं दुखपुष्टं मनुष्य उक्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति।
तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति चितामध्ये कोष्टमिव क्षिपन्ति।।15।।
अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेष्टयमानः।।16।।
मनुष्य जिस पुत्र को बड़े कष्ट उठाकर पालता-पोसता है, उसकी मौत पर उसे उठाकर घर से बाहर कर दिया जाता है। कुछ देर उसके लिए विलाप किया जाता है फिर चिता में झोंककर राख कर दिया जाता है या उसके शव को पशु-पक्षी नोचते हैं। उसकी धन-दौलत पर दूसरे लोग भोग करते हैं। मृतक के साथ केवल उसके अच्छे और बुरे कर्म जाते हैं।

⁘⁘⁘

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः।
अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः।।17।।
उसे वैसे ही छोड़ दिया जाता है, जैसे सूख जाने पर पंछी पेड़ को छोड़कर उड़ जाते हैं।

⁘⁘⁘

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयं कृतम्।
तस्मात्तु पुरुषो यत्नात् धर्मं सञ्चिनुयाच्छनैः।।18।।
महाराज! जीवन में निरंतर केवल पुण्य कमाना चाहिऐ, क्योंकि अग्नि में जलने के बाद परलोक में जीव के साथ केवल उसके पाप और पुण्य जाते हैं।

⁘⁘⁘

अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य चाद्यो महत्तमस्तिष्ठति ह्यन्धकारम्।
तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणां बुध्यस्व मा त्वां प्रलभेत राजन्।।19।।
महाराज! पृथ्वी लोक के ऊपर तथा नीचे के लोक गहन अंधकार में डूबे हैं, अर्थात् हम इतने ज्ञानशून्य हैं कि इन लोकों की सच्चाई को नहीं जानते। इस कारण हम मोह-माया से ग्रस्त रहते हैं। आप इनकी वास्तविकता समझिए जिससे आपको पछताना न पड़े।

⁘⁘⁘

इदं वचः शक्ष्यसि चेद् यथावन्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव।
यशः परंप्राप्स्यसि जीवलोके, भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति।।20।।
अगर आप मेरी बात को ठीक से समझकर विचार करेंगे तो पृथ्वी पर आपकी कीर्ति बुंद होगी तथा परलोक में आप शांत और निर्भय होंगे।

⁘⁘⁘

आत्मा नदी भारत पुण्यकर्मा सत्योदका धृतिकूला दयोर्मि।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभएव।।21।।
महाराज! हमारे शरीर में स्थित आत्मा को एक नदी समझिए। यह नदी ईश्वर के शरीर से निकली है। धैर्य इसके किनारे हैं, करुणा इसकी लहरें हैं, पुण्य इसके तीर्थ हैं, जो मनुष्य सदा पुण्य कर्मों में लिप्त रहता है, वह इस नदी में स्नान करके पवित्र होता है। लोभरहित आत्मा को सदा पवित्रा कहा गया है।

⁘⁘⁘

कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर।।22।।
काम-क्रोध जैसे मगरमच्छों और पाँच इंद्रियों के जल से पूरित संसार रूपी यह नदी 'जन्म और मरण' के अनेक पड़ावों से भरी है। इस नदी को धैर्य की नाव से ही पार किया जा सकता है।

⁘⁘⁘

प्रज्ञावृं धर्मवृं स्वबन्धुं विद्यावृं वयसा चापि वृद्धम्।
कार्याकार्ये पूजयित्वाप्रसाद्य यः सम्पृच्छेन्न स मुह्येत् कदाचित्।।23।।
जो व्यक्ति अपने बुजुर्गों का आदर करता है तथा उनसे परामर्श करता है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। वह कभी मोह-माया में नहीं फँसता।

⁘⁘⁘

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षु श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा।।24।।

धैर्य से विषय-वासनाओं तथा भूख को नियंत्रित करें, हाथ-पैरों को आँखों से नियंत्रित व रक्षित करें, मन से आँखों तथा कानों का नियंत्रण व रक्षा करें तथा अच्छे कार्यों से वाणी को नियंत्रित व रक्षित करें।

⁘⁘⁘

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी।
सत्यं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन् न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात्।।25।।
जो ब्राह्मण नियमित स्नान व ईश वंदना करता है, जनेऊ नहीं उतारता, व्रतों का पालन करता है, धर्मों-अधर्मों से कुछ नहीं लेता, सदा सत्य बोलता है तथा गुरुजन का सम्मान करता है, वह ब्रह्मलोक में स्थान पाता है।

⁘⁘⁘

अधीत्य वेदान् परिसंस्तीर्य चाग्नीनिष्ट्वा यज्ञै पालयित्वा प्रजाश्च।
गोब्राह्मणार्थं शस्त्रपूतान्तरात्मा हतः सङ्ग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति।।26।।
धर्म का जानकार, धर्म का भली-भाँति पालन करने वाला, अपनी प्रजा का हित साधने वाला, गायों तथा ब्राह्मणों के लिए युद्ध-भूमि में अपना बलिदान दे देने वाला अत्रिय स्वर्ग में स्थान पाता है।

⁘⁘⁘

वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्च धनै काले संविभज्याश्रितांश्च।
त्रेतापूं धूममाघाय पुण्यं प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुक्तेक्त।।27।।
शात्रों का अध्ययन करके, माँगने पर या बिना माँगे सभी की धन से सहायता करके तथा यज्ञ-अनुष्ठानों में भाव लेकर मृत्यु के बाद वैश्य स्वर्ग में सुख भोगता है।

⁘⁘⁘

ब्रह्म क्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्र क्रमेणैतान्न्यायतः पूज्यमानः।
तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपापस्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुङक्तेक्त।।28।।
ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की आदरपूर्वक सेवा करके, इनके आशीर्वाद से सभी पापों से मुक्त होकर, मृत्यु के बाद शूद्र स्वर्ग में श्रेष्ठ स्थान पाता है।

⁘⁘⁘

चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तक्ताह्य हेतुं चानुब्रुवतो मे निबोध।
क्षात्राद् धर्मादवीयते पाण्डुपुत्रस् त्वं राजन् राजधर्मं नियुक्ष्व।।29।।
राजन्! मैंने चारों वर्णों की गति आपको इसलिए बताई है, क्योंकि संकोचवश युधिष्ठिर अपने क्षत्रिय धर्म के निर्वाह से पीछे हट रहा है। मेरी प्रार्थना है कि उसका राज्य उसे सौंपकर आप उसे पुनः क्षत्रिय धर्म में लगा दें।

⁘⁘⁘

धृतराष्ट्र उवाच

एवमेतद् यथा त्वं मामनुशासति नित्यदा।
ममापि च मतिः सौम्यः भवत्यैवं यथात्थ माम्।।30।।
धृतराष्ट्र ने कहा-हे विदुर! तुम्हारी बातें धर्म-सम्मत और न्याय को पुष्ट करनेवाली हैं। मैं तुम्हारी बातों से पूरी तरह सहमत हूँ और चाहता हूँ कि जैसा तुम कहते हो, वैसा करूँ।

⁘⁘⁘

सा तु बुद्धिः कृताप्येवं पाण्डवान् प्रति मे सदा।
दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते।।31।।
मैं भी यह चाहता हूँ कि पांडवों को उनका राज्य वापस मिल जाए, लेकिन दुर्योधन से मिलकर मेरा विचार फिर बदल जाता है।

⁘⁘⁘

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित्।
दिष्टमेव धुं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम्।।32।।

विदुर! भाग्य का लिखा अटल है उसे कोई नहीं बदल सकता। मैं भाग्ये को ही बली मानता हूँ, कर्म-कर्तव्य को नहीं। अर्थात् धृतराष्ट्र ने घुमा-फिराकर पांडवों को राज्य देने से इनकार कर दिया।

⁘⁘⁘

।।आठवाँ अध्याय समाप्त।।

❑❑❑